शैक्षिक
संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका

अंक - 8 और 9, नवम्बर '95 - फरवरी '96

संपादन एवं वितरणः

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद - 461 001 (म.प्र.)
फोनः 07574 - 3518

वार्षिक सदस्यता (6अंक) : 35 रुपए
(ड्राफ्ट/मनीऑर्डर एकलव्य के नाम से भेजें)

मुखपृष्ठः एक गुमनाम अंग्रेज़ द्वारा 16वीं शताब्दी में लिखी गई किताब 'द क्राउन ऑफ नेचर' के एक पेज पर दिया गया चित्र। इसमें एक जंतु अपने तीन हाथों में कीमियगिरों द्वारा चांदी, सोने और पारे के लिए ईजाद रासायनिक संकेतों को पकड़े हुए है। जंतु का चेहरा एक कीमियागिर का है। कीमियागिर वो लोग थे जो विभिन्न धातुओं को सोने में बदलने की विधि खोजते थे। रासायनिक संकेतों का इस्तेमाल सबसे पहले उन्होंने ही किया। कीमियागिरों के लिए ये संकेत एक प्रकार से कूटलिपि थे ताकि वे अपनी जानकारी को दूसरों से छुपाए रख सकें। (रासायनिक संकेतों के विकास के बारे में विस्तृत विवरण अंदर के पृष्ठों में, चित्रः साभार लाइफ साइंस लाइब्रेरी से)।

पिछला आवरणः मशरूम (कुकरमुत्ते) का चित्र। यह फफूंद है। फफूंद परजीवी हैं, यानी अपना भोजन खुद नहीं बना सकते। (जीवजगत के वर्गीकरण पर सामग्री अंदर के पन्नों में)।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित

संकेत सूत्र; रासायनिक संगठन 11

Cl, Ag, Na,NaOH, H_2O आदि-आदि। रसायन शास्त्र में तत्वों के संकेत और सूत्र। जिनसे पदार्थ में तत्वों के संगठन का भी पता चलता है। इन आधुनिक संकेतों का विकास तो अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में हुआ। उसके पहले संकेतों का इस्तेमाल कीमियागिर लोग किया करते थे। तरह-तरह की आकृतियां। संकेत और सूत्र के विकास के ऐतिहासिक उलझाव-सुलझाव का परिचय देता लेख।
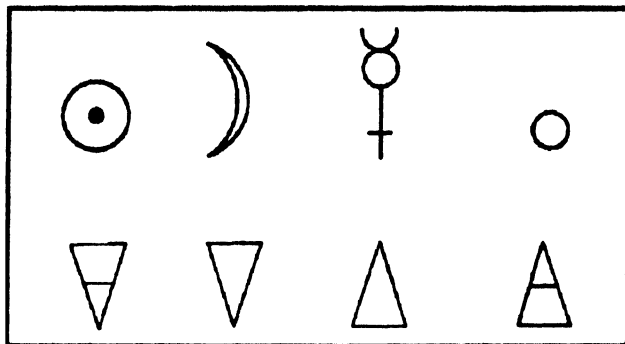
पोलियो और पक्षाघात (सवालीराम) .59

पोलियो के अधिकांश रोगी तो थोड़े-से खांसी, जुकाम के बाद यूं ही ठीक हो जाते हैं। घातक होता है दूसरे तरह का पोलियो। जिसमें विषाणु रोगी की आंतों में पहुंच जाते हैं। अगर शरीर का रक्षा तंत्र काबू कर पाया तो ठीक वरना ये तंत्रिका तंत्र को कब्जे में ले लेते हैं। सवालीराम की खोज भरी नज़र।

भूगोल, स्कूली किताबें और कुछ अनुभव. .51

ज़्यादातर शालाओं में पाठ्य-पुस्तकें ही शिक्षा का एकमात्र ज़रिया होतीं हैं। एक तरह से स्कूली शिक्षा पाठ्य-पुस्तकों के दायरे में बंध -सी जाती है। इसलिए भी क्योंकि परीक्षा भी सिर्फ उन सब बातों पर आधारित होती है जो पाठ्य-पुस्तकों में लिखी होती हैं। इसीलिए शिक्षा के अन्य पहलुओं के साथ-साथ पाठ्य-पुस्तकों का मूल्यांकन भी उतना ही ज़रूरी है। एक समीक्षात्मक नज़र के सहारे भूगोल की बुनियादी अवधारणाओं की जटिलता पर चर्चा।

इस अंक में

प्रिय संपादक,

संदर्भ का छठवां अंक मिला। इससे पहले मार्च-अप्रैल का अंक भी मिला। लेकिन बीच के अंक न जाने कहां रह गए। इसमें कोई संदेह नहीं कि पत्रिका बेजोड़ है। यह न केवल वस्तुओं को सही ढंग से प्रस्तुत करती है बल्कि उन्हें समझने के लिए दृष्टि भी प्रदान करती है। मेरा बेटा पांच वर्ष का है लेकिन वह भी बहुत चाव से इसकी कहानियां सुनता है व चित्र देखता है।

दीपा, मकान नं. 749,
सेक्टर-1, रोहतक, हरियाणा

प्रिय संपादक,

सातवां अंक मिला। अजय शर्मा का लेख 'बिजली और आवेश' व बरट्रैण्ड आर. ब्रिनले की रचना (विज्ञान गल्प) 'डाइनोसौर का अंडा' हमारे शिक्षक समुदाय को काफी पसंद आए। हमने इन रचनाओं को कक्षा में भी पढ़कर सुनाया। लेकिन इस बात का अफसोस है कि हम पत्रिका की बाट देखते-देखते निराश हो जाते हैं। क्योंकि 'संदर्भ' हमें बहुत लेट मिलती है। पत्रिका जल्दी-से-जल्दी पहुंचाने की कोशिश कीजिए।

एम. एस. पवार, प्राचार्य
राजीव गांधी मेमोरियल हाई स्कूल
धावला, ज़िला बैतूल, म. प्र.

प्रिय संपादक,

संदर्भ की नियमित वाचक हूं। संदर्भ मई-जून 95 के अंक में दिशा कहानी पढ़ी। वह मुझे बेहद पसंद आई। मैं इसका गुजराती में अनुवाद करना चाहती हूं। मैं आपसे अनुरोध करती हूं कि मुझे दिशा कहानी का गुजराती में अनुवाद करने की अनुमति दीजिए।

भावना पाठक
लोक विद्यालय, मायधार
ज़िला भावनगर, गुजरात

प्रिय संपादक,

संदर्भ का सातवां अंक पढ़ा। सुशील जोशी का लेख 'परमाणु भार की गुत्थी अणु-परमाणु भेद से सुलझी' ने उनके पिछले अंक में छपे लेख की गुत्थी सुलझाने का सराहनीय कार्य कर 'संदर्भ' का वज़न बढ़ाया है। इसके लिए सुशील भाई बधाई के पात्र हैं।

रश्मि पालीवाल का लेख निश्चय ही सामाजिक अध्ययन के अध्यापन के लिए एक प्रेरणादाई सोच का तरीका है। अजय शर्मा का लेख 'बिजली और आवेश' कई प्रश्नों का एक हल साबित हुआ। विज्ञान गल्प 'डाइनोसौर का अण्डा' काफी रोचक लगी। सवालीराम ने सिर खुजलाकर

अपनी और पाठकों की हालत खराब कर दी। कुछ लेख हल्के रहे लेकिन लगता है कि संदर्भ अब दिशा पकड़ती जा रही है।

एस. एन. साहू
शासकीय आर. एन. ए. स्कूल
पिपरिया, ज़िला होशंगाबाद, म. प्र.

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' का छठवां अंक पढ़ा। उस अंक में इब्ने इंशा की किताब के अंश पढ़े। आप इब्ने इंशा की किताब के अंश देकर अच्छा करते हैं। इंशा उर्दू के शीर्ष स्तर के व्यंगकार हैं। संदर्भ के छठवें अंक में पेज 80 पर छपी रचना 'एक सबक जुगराफिये का' में एक वाक्य है – "पुराने ज़माने में ज़मीन गुल मोहम्मद की तरह साकिन होती थी।" यहां हाशिए में गुल मोहम्मद को कश्मीर का भूतपूर्व मुख्य मंत्री बताया गया है। जबकि रचना में गुल मोहम्मद से मुराद फारसी का मुहावरा है जो इस प्रकार है, "फलक जुंबद न जुंबद गुल मोहम्मद" यानी आसमान तो हरकत कर सकता है मगर गुल मोहम्मद अपनी जगह से नहीं हिल सकते।

'संदर्भ' के लिए बस इतना ही कह सकता हूं कि – अल्लाह करे जोरे शबाब और ज़्यादा।

ए. एन. कुरेशी (व्याख्याता)
डाईट, शाजापुर, म. प्र.

इनामगांव – उठे कुछ सवाल

प्रिय संपादक,

सातवें अंक में इनामगांव के बारे में लेख 'खोद निकाला एक गांव' पढ़ा। बस मज़ा आ गया। और पढ़ने की तलब हो रही है। कई जगह संकेतों को विस्तार से पढ़ने की इच्छा भी हो रही है। कई प्रश्न भी सूझ रहे हैं। सबसे पहला तो यही कि सूखा मौसम होते जाने की क्या वजहें रही होंगी? इसमें मेरी गहरी रुचि है।

बर्तन-भांडों पर चित्रों का क्रमशः कम होते चले जाना.... उन्हें किस कदर उदासी घेरती होगी न अपने आसपास की कम होती जाती दुनिया में, इसका अंदाज़ा तो हम सब को है ही अपने आसपास के अनुभवों की बदौलत।

एक और जिज्ञासा – क्या इस बात का कोई प्रमाण मिलता है कि कम पानी की स्थिति से जूझने के लिए उन्होंने कृषि के ढंग में कोई बदलाव किया? पैर काटकर लाश दफनाने की वजह मालूम हुई? इसके पीछे ज़रूर कोई पेचीदा कहानी होगी, शायद प्रेतों की चहल-कदमी रोकने के लिए ऐसा करते होंगे? और मुखिया परिवार के अपने लोग मृतकों से डरते नहीं होंगे?

बढ़िया लेख के लिए फिर से स्नेह।

तेजी ग्रोवर, 'प्रेमचंद पीठ'
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, म. प्र.

प्रिय संपादक,

मैं 11वीं कक्षा का विद्यार्थी हूं। मैंने 'संदर्भ' को पढ़ा तो मुझे ऐसा लगा कि मैं इस प्रकार की और किताबों का अध्ययन करूं। मैंने फाइनमेन वाला लेख पढ़ा।

इस लेख में मुझे वह घटना काफी अच्छी लगी जिसमें उन्होंने ब्राज़ील की कक्षा को पढ़ाया। जिस प्रकार लड़के सिर्फ परिभाषाएं रट लेते हैं लेकिन समझ नहीं पाते, ऐसी ही समस्या हमारे यहां के स्कूलों में भी है।

मैं सोचता हूं कि यदि ऐसी कोई किताब मिल जाए जिसमें प्रयोगों के साथ पाठ समझाए गए हों तो हमारे यहां के लड़कों का भी जीवन बन सकता है। क्या फाइनमेन की लिखी किताबें मिल सकती हैं? मुझे ऐसा लगता है कि उनकी किताबों को पढ़कर मैं यहां की शिक्षा में कुछ कर सकता हूं।

प्रमोद कुमार, ग्राम नथुआ,
फिरोज़ाबाद, उ. प्र.

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' का सातवां अंक पढ़ा। बेशक, वैज्ञानिक विषयों पर सचित्र लेख अत्यंत उत्कृष्ट हैं। दैनिक जीवन में उपयोगी फोटो कॉपी मशीन की कार्य प्रणाली सरल भाषा में दी गई है।

इसी प्रकार आप आगे भी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में इस्तेमाल होने वाली चीज़ों के बारे में समय-समय पर बताते रहें। छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने में पत्रिका की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। लेकिन इसके लिए यह छात्रों

संयुक्तांक क्यों.......

प्रिय पाठक,

संदर्भ के दूसरे अंक से जो शुरुआत हुई देरी होने की तो गाड़ी लगातार पिछड़ती ही गई। उसके बाद के पांच-छह अंकों के दौरान काफी कोशिश की कि थोड़ा-थोड़ा कम समय लेकर यह फासला खत्म कर दें – परंतु हर बार दो महीने से थोड़ा ज़्यादा ही समय लग जाता है।

तो हमने तय किया कि अब सिर्फ एक ही ज़रिया है कि नवम्बर-दिसम्बर 1995 और जनवरी-फरवरी 1996 को एक ही साथ संयुक्तांक के रूप में निकाल कर इस फासले को खत्म कर लें। इस तरह ये अंक नवम्बर 95 से फरवरी 96 का है। गलती हमारी है, अगले अंक आपको समय पर पहुंचाने की पूरी कोशिश होगी हमारी तरफ से।

हां, इसी के साथ एक बात और। संदर्भ की वार्षिक सदस्यता से मतलब छह अंक मिलने से है। तो सदस्यों को पूरे छह अंक ही मिलेंगे। उनके लिए यह अंक एक ही गिना जाएगा।

एक बार फिर, गलती हमारी है माफ कीजिएगा।

संपादक मंडल

को आसानी से मिल सके यह भी ज़रूरी है।

राकेश मोहन त्रिपाठी, व्याख्याता,
कुनकुरी, रायगढ़, म. प्र.

प्रिय संपादक,

आज के दौर में पत्रिकाओं की सबसे बड़ी समस्या है पत्रिका का ग्राहकों तक नहीं पहुंच पाना। पाठक जब अपना पैसा खर्च करता है तो वह यह भी चाहता है कि पत्रिका उसे नियमित रूप से मिले। अब चाहे प्रकाशक की वजह से या डाक व्यवस्था की गड़बड़ी की वजह से पत्रिका पाठकों तक नहीं पहुंच पाती है तो पाठक की रुचि भी धीरे-धीरे खत्म होने लगती है। जैसे उदाहरण के लिए संदर्भ पत्रिका को ही लें। मुझे इसके शुरू के सिर्फ दो अंक ही मिल सके हैं शेष अंक नहीं। ऐसे में कौन पत्रिका मंगाना चाहेगा? यह बात आप बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

अयोध्या प्रसाद पाण्डेय
के. एफ. आई. रूरल स्कूल
राजघाट फोर्ट, वाराणसी, उ. प्र.

प्रिय संपादक,

सातवें अंक में प्रकाशित 'जब हैंडपंप बिगड़े तो' पसंद आया। ग्रामीण क्षेत्रों में आजकल हालत है कि जानकारी के अभाव में नलकूप बिगड़े रहते हैं। ऐसे ही जानकारी आगे भी देंगे, अपेक्षा है।

'सात अजूबे' की फेहरिस्त देखकर मैं खुद आश्चर्य में पड़ गया। लेख वास्तव में अजूबा लगा। मनोहर नोतानी बधाई के पात्र हैं।

चम्पालाल कुशवाहा,
हिरनखेड़ा, होशंगाबाद

एक बाल के सहारे......

खासकर सूक्ष्म जगत की बात हो और वह भी उनके आकार -प्रकार की, तो तुलनात्मक अध्ययन से सही तस्वीर उभरती है। वरना ऐसा कुछ कहकर सिर्फ अहसास-सा करा कर छोड़ दिया जाता है कि एक ऑलपिन की टोपी पर हज़ारों, लाखो सूक्ष्म जीव या कोशिकाएं आ सकती हैं।

हमारे शरीर में बाल एक ऐसी चीज़ है जो आंखों से दिखने वाली सबसे बारीक-सी संरचना लगती है। लेकिन ज़रा इसकी चौड़ाई की तुलना कई अन्य रचनाओं से करके देखिए तो!

1. बाल की चौड़ाई
2. अंडाणु
3. शुक्राणु
4. गाल की खाल से ली गई कोशिका
5. श्वेत रक्त कण
6. लाल रक्त कण
7. तंत्रिका कोशिका (न्यूरॉन)

एक माइक्रोमीटर = 1/1000 मि.मी.
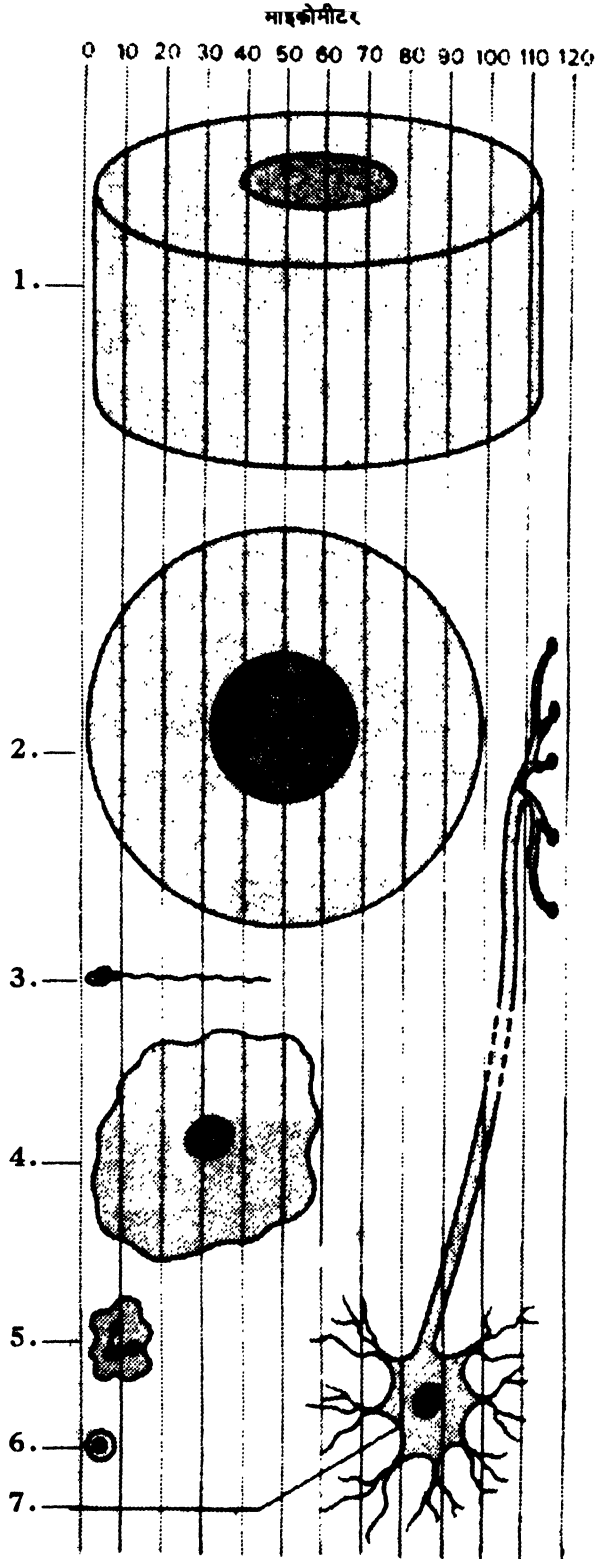
यूं बनी एक कहानी

बच्चे मैदान में बिछे चित्रों में से चित्र उठाते गए और एक-एक हिस्सा जुड़ता गया। और यूं बन गई कहानी।

होशंगाबाद ज़िले के एक गांव टुगारिया में बच्चों के साथ कई तरह की गतिविधियां करते हुए हमने चित्रकला का एक सत्र आयोजित किया। रंग बने थे गेरू, मिट्टी, नील आदि को पानी में घोलकर। सभी बच्चे चार-चार, पांच-पांच के समूह में बैठे थे। हमने उन्हें ब्रश और कागज़ दिए। और बातचीत शुरू हुई उनसे कि क्या बनाना है:

– "क्या-क्या बनाने वाले हो तुम लोग?" हमने बच्चों से पूछा।

– "कोई भी चीज़ जो हमें अच्छी लगे?" बच्चों ने एक साथ कहा।

– "हां।" हमने भी इसका समर्थन किया। जो तुम्हें अच्छा लगे वही बनाना।

कुछ बच्चे आपस में बातचीत करने लगे कि उन्हें क्या बनाना है। तो कुछ बच्चों ने योजनाएं बनानी शुरू कर दीं।

– "एक सुंदर-सा घर।"

–"हां एक घर, जिसमें एक हैंडपंप भी लगा होगा और लड़की पानी भर रही होगी।"

– "मैं तो एक स्कूल बनाऊंगा।"

– "मैं एक पेड़ बनाऊंगा।"

– "क्या मैं एक रंगोली बना सकती हूं?" एक लड़की ने हमसे पूछा।

इस तरह बच्चे बातचीत भी कर रहे थे और चित्र भी बनाते जा रहे थे। आधे घंटे के बाद उन्होंने हमें अपने बनाए हुए चित्र दिखाना शुरू किया।

एक बच्चे ने चित्र दिखाते हुए पूछा, "इन चित्रों का क्या करेंगे?"

हमने कहा, "चलो इसके बारे में भी सोचते हैं।"

सभी चित्रों को मैदान में फैला दिया गया। बच्चों ने चित्रों पर पत्थर रखे ताकि हवा से चित्र उड़ न जाएं।

अब सभी बच्चों को एक गोल घेरे में बैठाते हुए हमने कहा, "आओ, पहले तो यह देखें कि किस बच्चे ने क्या बनाया है।"

एक ने पूछा, "क्या आप लोग इनमें से सबसे अच्छा चित्र चुनेंगे?"

"नहीं, हम तो सिर्फ चित्र ही देख रहे हैं" हमने कहा।

फिर हमने सभी चित्रों पर नज़र दौड़ाई। एक चित्र में एक चूहा बना था। एक दूसरे चित्र में दो चूहे बनाए गए थे। हमने इन दोनों चित्रों को एक साथ रख दिया। फिर इसी तरह सभी ऐसे चित्रों को एक साथ रखना शुरू किया जिनमें बनाई चीज़ों में कुछ समानता दिखाई दे रही थी। इस तरह जो समूह बने उनमें मकानों के चित्र, फूलों के चित्र, लड़के-लड़कियां, गाय-हाथी, एक हैंडपंप और एक लड़की तथा एक चिड़िया आदि के चित्र थे।

अब बच्चों से बातचीत शुरू की।

—"चिड़िया ने क्या किया?" हमने बच्चों से सवाल किया।

—"उड़ गई" किसी ने जवाब दिया।

उस कागज़ को बगल में रखते हुए हमने पूछा, "फिर क्या हुआ?"

—"शिकारी आया" कोई बच्चा बोला।

एक बच्चे ने आदमी का एक चित्र उठाया जिसके हाथ में एक जाल भी था। उसने कहा:

—"शिकारी चिड़िया को पकड़ कर ले गया।"

—"फिर शिकारी कहां गया?" हमने यूं ही पूछ लिया।

—"यहां पहुंच गया।" एक बच्चे ने हैंडपंप का चित्र उठाकर कहा।

—"उसे ज़ोरों से प्यास लगी थी, पानी पीना था।"
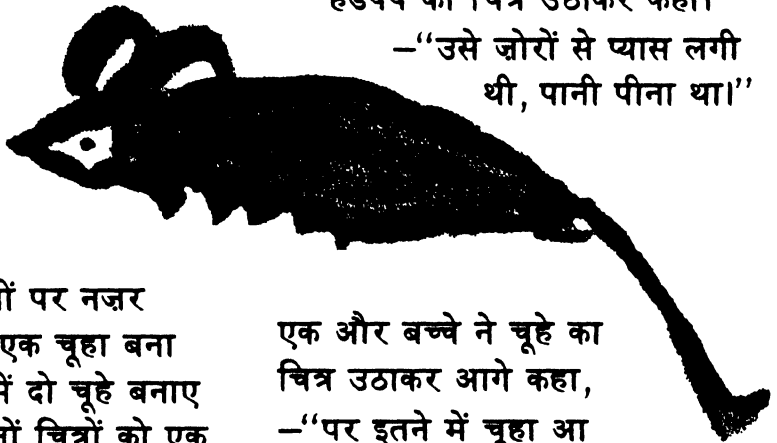
एक और बच्चे ने चूहे का चित्र उठाकर आगे कहा,

—"पर इतने में चूहा आ गया। उसने चिड़िया का जाल काट डाला तो चिड़िया उड़ गई। फिर शिकारी अपना जाल लेकर घर गया।"

एक बच्चे ने एक दूसरे चित्र को उठाया जिसमें एक मकान और मकान के सामने खड़ी लड़की का चित्र बना हुआ था। अब फिर शिकारी वाली बात को आगे बढ़ाते हुए उसने कहा,

— "यह शिकारी की बेटी है।"

—"रात हो गई है, कुछ आवाज़ सुनकर लड़की बाहर आ गई।

बाहर हाथी आ गया है। बाहर खड़ा है।" एक बच्चे ने हाथी का चित्र हाथ में लेकर बात पूरी की।

–"फिर क्या हुआ?" हमने पूछा।

– "ये पंडितजी आ गए।"

यह कहते हुए एक बच्चे ने पंडितजी का चित्र हमें दिखाया।

– "पंडितजी ने हाथी को देखा और हाथी पर बैठकर चले गए।"

– "और शिकारी की लड़की से शादी करने के लिए एक लड़का आ गया।" एक लड़के ने कहा।

– "लेकिन लड़की तो अभी छोटी है।" हमने सबकी ओर देखते हुए अपनी बात कही।

तो.... तो... बच्चे कुछ सोच में पड़ गए कि अब कहानी को कैसे आगे बढ़ाया जाए।

एक बच्चे ने फिर से वही चित्र उठाया जिसमें लड़की और मकान बना हुआ था और उसने कहा,

–"अंधेरा हो गया है, बेटी शिकारी का रास्ता देख रही है।"

– "शिकारी तो नहीं आया लेकिन भूत आ गया।"

एक बच्चे ने कहानी के छोर को किसी तरह पकड़ने की कोशिश की। बच्चा जिस चित्र को हाथ में उठाकर बता रहा था उसमें एक मकान बना हुआ था और मकान में एक छोटा-सा आदमी दिख रहा था। उस आदमी को बच्चा भूत बता रहा था।

– "भूत अंदर है, लड़की बाहर आ गई है तो भूत भी बाहर आ गया। लड़की ने जल्दी से घर के अंदर जाकर दरवाज़ा बंद कर लिया।"

अपनी बात खत्म करके बच्चे ने एक चित्र हाथ में ले लिया।

– "भूत बाहर ही रह गया। और कहानी खत्म हो गई...... कहानी

खत्म . . . .।"

एक बच्चे ने अपना विरोध जताते हुए एक दूसरा चित्र हाथ में लेकर कहा, "कहानी अभी खत्म नहीं हुई है। गाय भी तो आ गई है।"

बच्चों ने बनाए चित्र तो अब बचे ही नहीं थे फिर कहानी को आगे कैसे बढ़ाया जाए। गाय तो आ गई लेकिन फिर क्या हुआ......? गाय की तस्वीर से कहानी आगे नहीं बन पा रही थी। इसलिए हमने तय किया कि कहानी अधूरी-सी तो लगती है पर यहां खत्म हो सकती है।

यमुना, ब्रजेश और ज्योति,
(एकलव्य के होशंगाबाद केंद्र में कार्यरत)

चकमक क्लब: गांवों-कस्बों में बच्चों द्वारा चलाए जा रहे ऐसे केन्द्र, जहां वे कई तरह की गतिविधियां करते हैं। जैसे पुस्तकालय चलाना, बालमेले आयोजित करना, प्रश्न-मंच प्रतियोगिता आदि। इनके अलावा बच्चे यहां विज्ञान के विभिन्न प्रयोग भी करते हैं।

सवालीराम ने पूछा सवाल

सवाल: बादल क्यों गरजता है?

लीलाम्बर पटेल, पुरषोत्तम चौधरी, संतोष साहू, कक्षा सातवीं,
शास, आ. उच्च. मा. शाला, गोटेगांव, ज़िला नरसिंहपुर

शायद इस सवाल का जवाब आपके पास हो। हमें लिख भेजिए। सही जवाबों को अगले अंक में प्रकाशित करेंगे। हमारा पता है – संदर्भ, द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, 461 001.

इस बार सवालीराम ने जिस पोलियो वाले सवाल का जवाब दिया है वो बाबूलाल, सुनील, कक्षा-7, गांव अमलेटा, ज़िला रतलाम ने पूछा था।
इस सवाल का जवाब भी कई लोगों ने देने की कोशिश की। सबसे सही जवाब था एस. एन. साहू, शिक्षक, शास. आर. एन. ए. उ. मा. विद्यालय, पिपरिया का।

संकेत और सूत्र: रासायनिक संघटन की एक अभिव्यक्ति

● सुशील जोशी
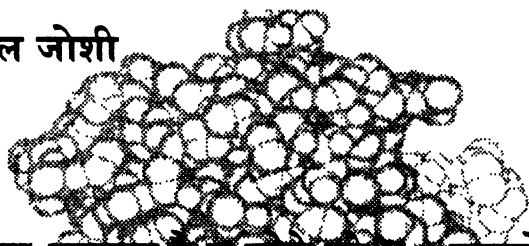
हमारे लिए कितना आसान है न लोहे को Fe, हाइड्रोजन को H, ऑक्सीजन को O से दर्शाना। लेकिन जब वैज्ञानिक रसायन शास्त्र की इस भाषा को खोजने में लगे हुए थे तब सब कुछ इतना आसान नहीं था।

जब किसी एक काम के लिए कोई भाषा विकसित होती है तो धीरे-धीरे एक और प्रक्रिया भी चलती है। वह काम उस भाषा से निर्धारित होने लगता है यानी कि उस भाषा के दायरे में बंधने-सा लगता है। और फिर कई मर्तबा पुरानी भाषा में उस काम की अभिव्यक्ति मुश्किल हो जाती है।

रसायन शास्त्र को उसकी विशिष्ट भाषा 18वीं-19वीं सदी में मिली। यह भाषा थी संकेत, सूत्र व समीकरण की। ऐसा नहीं कि उससे पहले संकेतों का उपयोग न किया जाता रहा हो। किमियागिर यानी अलकेमिस्ट लोग भी विभिन्न तत्वों को दर्शाने के लिए संकेतों का उपयोग करते थे मगर अलकेमी के संकेत और आधुनिक संकेतों में ज़मीन-आसमान का अंतर है।

दरअसल अलकेमी के तत्व ही कुछ और चीज़ थे। आज हम तत्वों का अर्थ भौतिक पदार्थ से लगाते हैं। अलकेमी के लिए तत्व का अर्थ गुणों से था। पारा वास्तव में कोई भौतिक पदार्थ न होकर कई गुणों (जिन्हें उस समय तत्व कहा जाता था) का मिला-जुला रूप था। इन गुणों को एक साथ या अलग-अलग किसी दूसरे पदार्थ में प्रविष्ट कराना ही रासायनिक क्रिया थी। इसलिए जब पारे
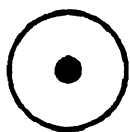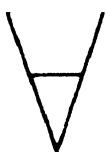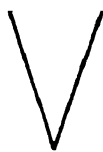
क्या थे अलकिमिया के संकेत: इन संकेतों से तत्वों के संघटन का कोई आभास नहीं मिलता। ये सिर्फ एक चित्रात्मक प्रस्तुति ही कहे जा सकते हैं।

का संकेत ☿ बनाया गया तो इसका मतलब मात्र एक चित्रात्मक प्रस्तुति भर था। ध्यान दीजिए कि ☿ से इसकी बनावट का कोई आभास नहीं मिलता। आधुनिक रसायनशास्त्र में हम जिस रूप में संकेतों को समझते हैं उससे इसका कोई संबंध नहीं है।

आधुनिक संकेत

वास्तव में आधुनिक संकेतों की शुरूआत भी शायद शॉर्टहैंड के नज़रिए से हुई थी। आधुनिक रसायनशास्त्र में संकेत का ज़िक्र हमें सर्वप्रथम गायटन, लेवोज़िए, बर्थोलेट व फोरक्राय की पुस्तक *'मेथोड-डी-नॉमेनक्लेचर किमीक'* (1787) में मिलता है। इस पुस्तक में पहली बार रासायनिक पदार्थों के नामकरण के सिद्धांतों को प्रस्तुत किया गया। पहला सिद्धांत तो यह था कि पदार्थ के नाम उसकी बनावट को दर्शाएंगे। इसके अलावा इस पुस्तक में यह भी सुझाव दिया गया था कि पदार्थ के नाम आमतौर पर ग्रीक व लैटिन मूल पर आधारित होंगे। यहां यह बात गौरतलब है कि गायटन पर 'कार्ल लिनियस' का बहुत प्रभाव था और लिनियस ने उसी सदी की शुरूआत में पेड़-पौधों व जीव-जन्तुओं का नामकरण नए सिरे से करने का काम किया था।

इस नामकरण की सबसे प्रमुख बात यह थी कि इसमें सारे नामों का आधार तत्वों के नामों को बनाया गया था। जो भी उस समय सरलतर पदार्थों में विभक्त न किया जा सका हो उसे तत्व माना

रसायन शास्त्र और प्रयोगशाला: 1825 में जर्मनी के गिएसन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जुस्टस वॉन लेबिग द्वारा स्थापित प्रयोगशाला का 1842 में बनाया गया रेखाचित्र। यह प्रयोगशाला करीब 30 साल तक रसायनज्ञों के लिए एक महत्वपूर्ण जगह बनी रही, जहां वे आकर काम करते थे।

गया था। अलकिमिया से यह एक प्रमुख अंतर है कि इस नए तरीके में प्रत्येक तत्व का संकेत तो स्वतंत्र होगा मगर उन तत्वों से मिलकर बने यौगिक के संकेत (सूत्र) इन तत्वों के संकेतों से मिलकर बनेंगे।

बहरहाल इस पुस्तक के प्रकाशक ने तथा लेवोज़िए के प्रयासों ने रसायनज्ञों का ध्यान मात्रात्मक अध्ययन की ओर आकृष्ट किया। लेवोज़िए का निम्नलिखित कथन गौरतलब है:

"हम सिर्फ शब्दों के माध्यम से सोचते हैं। भाषा वास्तव में विश्लेषण की विधि होती है। बीजगणित (अलजबरा)... एक भाषा भी है और विश्लेषण की विधि भी है। तर्क की कला दरअसल एक सुव्यवस्थित भाषा से अधिक कुछ नहीं है।"

लेवोज़िए इस बात को भलीभांति

एल्युमिना
नाइट्रोजन
पानी
अमोनिया
ओलेफिएन्ट गैस
कार्बोनिक ऑक्साइड
कार्बोनिक अम्ल
सल्फ्यूरिक अम्ल
पोटाश एलम
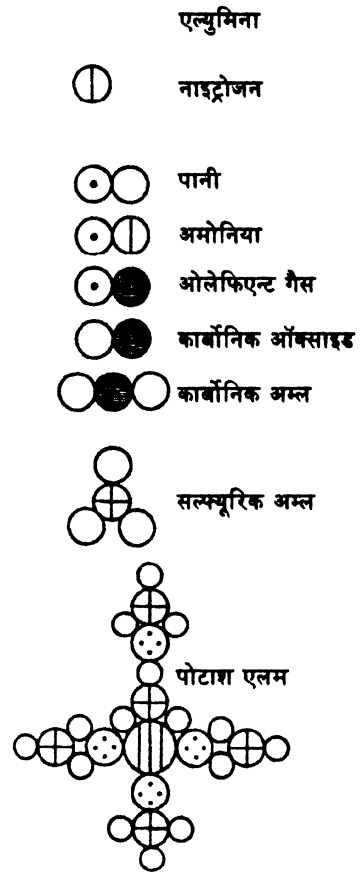
डाल्टन के संकेत और विभिन्न तत्वों के परमाणु भार: 1803 में डाल्टन ने अपना प्रसिद्ध परमाणु सिद्धांत प्रस्तुत किया। साथ ही उन्होंने विभिन्न तत्वों के लिए संकेत भी बनाए। जो ज्यामितीय आकृतियां अधिक लगते थे। इनके प्रचलन में नहीं आने का एक सबसे बड़ा कारण था, छपाई में दिक्कतें पेश आना।

समझ चुके थे कि पदार्थों के नाम मात्र छोटे रूप में लिखने के लिए चंद संकेत का इस्तेमाल, और रासायनिक बनावट व क्रियाओं को व्यक्त करने के लिए संकेतों की भाषा के इस्तेमाल में बहुत फर्क है।

क्या है यह फर्क?

यह फर्क अलकेमी और आधुनिक रसायनशास्त्र का फर्क है। आधुनिक रसायनशास्त्र के संकेतों का विकास परमाणु सिद्धांत तथा पदार्थों की परमाणु अवधारणा के साथ हुआ।

नवीन रसायनशास्त्र में जब आप H (या डाल्टन की भाषा में ⊙) लिखते हैं तो यह हाइड्रोजन को लिखने का संक्षिप्त रूप ही नहीं है – इस संकेत से पदार्थ

की मात्रा का भी पता चलता है। H हाइड्रोजन के परमाणु का प्रतीक है जिसकी मात्रा निश्चित है परन्तु एक परमाणु को तो तौला नहीं जा सकता। लिहाज़ा रसायनशास्त्रियों ने एक नई अवधारणा को अपनाया जिसे 'मोल' कहते हैं।

'मोल' का अर्थ है किसी पदार्थ के परमाणुओं या अणुओं (रासायनिक इकाइयों) की एक निश्चित संख्या का वज़न। वह निश्चित संख्या क्या होगी यह तय करना अपनी मर्ज़ी पर है। फिलहाल यह माना जाता है कि 12 ग्राम कार्बन में परमाणुओं की संख्या ही वह निश्चित संख्या है जिसके आधार पर 'मोल' परिभाषित किया जाएगा। यदि हाइड्रोजन के 1 ग्राम में उतने ही परमाणु होंगे जितने 12 ग्राम कार्बन में होते हैं तो 1 ग्राम ही हाइड्रोजन का मोल कहलाएगा। वास्तव में हाइड्रोजन का एक मोल 1.007 ग्राम आता है।

किसी भी पदार्थ का संकेत उसके एक मोल का प्रतीक होता है। अर्थात हर पदार्थ का संकेत उसकी रासायनिक इकाइयों (अणु या परमाणु) की निश्चित व बराबर संख्या को दर्शाता है। यानी कि H का मतलब हुआ एक मोल हाइड्रोजन या 1.007 ग्राम हाइड्रोजन।
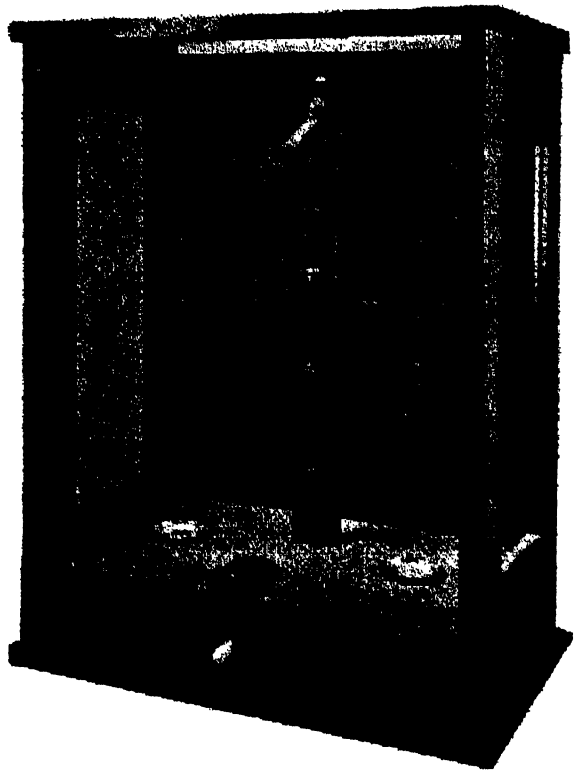
अलकिमिया के संकेतों से बना सूत्र और आधुनिक संकेतों के आधार पर बना वही सूत्र।
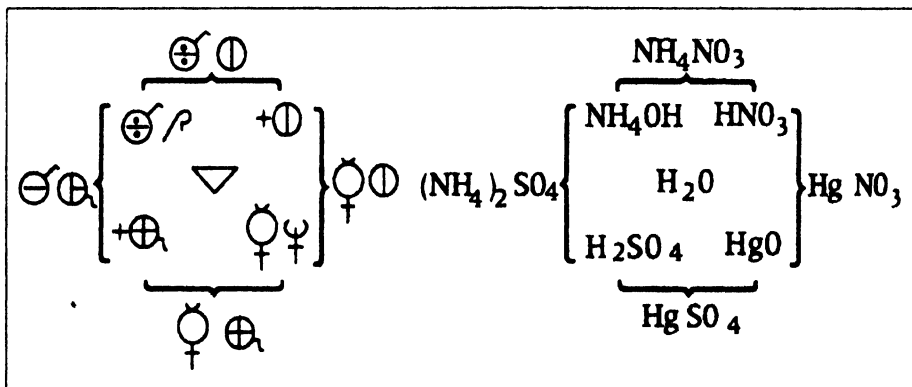
र्ज़ीलियस और डाल्टन

बर्ज़ीलियस

लेवोज़िए, गायटन, फोरक्राय के संकेत तो सामने आ ही चुके थे। डाल्टन ने जब 1804 में अपना परमाणु सिद्धांत पेश किया तो उन्होंने भी परमाणुओं को दर्शाने के लिए संकेतों का इस्तेमाल किया। लेवोज़िए, गायटन, फोरक्राय के संकेत ग्रीक व लैटिन अक्षरों से बने थे जबकि डाल्टन के संकेत ज्यामिति आकृतियां थे।

डाल्टन

इस बीच बर्ज़ीलियस ने अक्षरों से संकेत बनाए और एक पूरी तालिका प्रकाशित कर दी। डाल्टन को बर्ज़ीलियस के संकेत फूटी आंखों नहीं सुहाते थे। 1837 में ब्रिटिश ऐसोसिएशन फॉर एडवांसमेंट ऑफ साईन्स ने सारे ब्रिटिश रसायनशास्त्रियों को बर्ज़ीलियस के संकेत इस्तेमाल करने के लिए राज़ी कर लिया। इस पर टिप्पणी करते हुए डाल्टन ने लिखा:

"बर्ज़ीलियस के संकेत डरावने हैं। जितनी देर में रसायन-शास्त्र का कोई युवा विद्यार्थी ये संकेत सीखेगा उतनी देर में वह हिब्रू भाषा सीख सकता है। ये (बर्ज़ीलियस के) संकेत परमाणुओं की भगदड़ जैसे दिखते हैं। इन्हें किसी क्रम में क्यों नहीं जमाया जा सकता? (ये) विज्ञान में दक्ष व्यक्ति को भ्रमित करेंगे, विद्यार्थियों को निरुत्साहित करेंगे और परमाणु सिद्धांत की सुंदरता व सरलता को नष्ट कर देंगे।"

विज्ञान के इतिहासज्ञ बताते हैं कि अप्रैल 1837 में इन संकेतों पर काफी गर्मागर्म बहस के बाद ही डाल्टन को पहला दिल का दौरा पड़ा था।

बहरहाल डाल्टन के संकेत चले नहीं। मुख्य समस्या मुद्रकों की ओर से आई। ये संकेत छापने में काफी अतिरिक्त खर्च होता था। परन्तु बर्ज़ीलियस के हों या डाल्टन के, संकेतों ने रसायन-शास्त्र के विकास में बहुत योगदान दिया। इनके ज़रिए रसायनज्ञों की आस्था रासायनिक परमाणु में बढ़ी और जटिल रासायनिक क्रियाओं को समझने में मदद मिली। स्वयं बर्ज़ीलियस के संकेत भी कई कारणों से काफी पेचीदा होते गए थे। मगर वह कहानी यहां मौजूं नहीं है।

कितनी है यह संख्या?

वैसे तो इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता कि एक मोल में रासायनिक इकाइयों की संख्या कितनी है, बशर्ते कि हम हर बार उतनी ही संख्या की बात करें। इसका कारण यह है कि पदार्थ अपनी रासायनिक इकाई के रूप में ही क्रियाएं करते हैं। हमें सिर्फ इतना पता होना चाहिए कि इन रासायनिक इकाइयों के बीच परस्पर क्या अनुपात है। उनकी वास्तविक संख्याएं क्या हैं, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। बहरहाल यदि आप जानना चाहते हैं कि एक मोल में रासायनिक इकाइयों की संख्या कितनी होती है तो वह आंकड़ा 6.022045×10^{23} है। इसे सन्निकटन करके 6.022×10^{23} भी लिखा जाता है। यह 'एवोगेड्रो संख्या' कहलाती है। (गौरतलब है कि इसकी खोज एवोगेड्रो ने नहीं की थी।) इसका मतलब यह है कि 12 ग्राम कार्बन में, 64 ग्राम तांबे में, 23 ग्राम सोडियम में, 32 ग्राम गंधक में, प्रत्येक में परमाणुओं की संख्या 6.022×10^{23} होगी। C, Cu, Na, संकेत इसी संख्या के प्रतीक हैं।

जब हम संकेतों को मात्र शॉर्टहैंड के रूप में न देखकर मात्रात्मक अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं तो वास्तव में रसायनशास्त्र की भाषा के अंग बनने लगते हैं। तब इनके आधार पर पदार्थों की रासायनिक बनावट को दर्शाना (रासायनिक सूत्र) तथा उनकी परस्पर क्रिया को (समीकरण द्वारा) प्रदर्शित करना संभव हो जाता है। परन्तु उससे पहले एक छोटा-सा विचलन और।

यह तो आप जानते हैं कि कई तत्व ऐसे हैं जो आम परिस्थितियों में परमाणु के रूप में नहीं रहते। मसलन ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, क्लोरीन, नाइट्रोजन, फ्लोरीन, आयोडीन, ब्रोमीन आदि। ये सभी तत्व दो परमाणुओं के मेल से बने अणुओं के रूप में उपस्थित होते हैं। अतः इनका संकेत क्रमशः O, H, Cl, N, F, I, Br लिखना सही नहीं होगा।

क्योंकि यह इनके रासायनिक संघटन का गलत प्रस्तुतिकरण होगा। अतः इन्हें दर्शाने के लिए किसी तरीके की ज़रूरत थी। बर्ज़ीलियस ने इसके लिए यह तरीका सुझाया कि दो परमाणु दर्शाने के लिए तत्व के संकेत को एक आड़ी रेखा से काट दिया जाए। उदाहरण के लिए H और Ħ या O और Θ। परन्तु यह तरीका चला नहीं। इसके बाद सुझाव आया कि परमाणुओं की संख्या दर्शाने के लिए संकेत के ऊपर बिन्दियां लगाई जाएं। जैसे o और ȯ । इस प्रकार लिखने पर पानी का

सूत्र:
~~H~~O या
$\underline{H}O$ या
$\dot{H}O$ होगा।

तो अब हम सूत्र पर आ जाते हैं। वैसे देखा जाए तो सूत्र भी एक किस्म के संकेत ही हैं। अंतर यही है कि सूत्र अणुओं के होते हैं। पहले-पहल पदार्थों के सूत्र लिखते समय तत्वों के बीच + चिह्न लगाया जाता था। क्यों? यह आप ही सोचिए। (बीजगणित के संदर्भ में विचार करेंगे तो उत्तर अवश्य मिलेगा) जैसे पानी को ~~H~~ + O या $\underline{H}$ + O या $\dot{H}$ + O लिखा जाता था। इसमें भी एक नियम यह था (और आज भी है) कि ज़्यादा धनात्मक तत्व को पहले स्थान दिया जाता था।

चूंकि आड़ी लाइन वगैरह लगाना मुद्रकों के लिए कठिन था इसलिए एक नई विधि निकाली गई। इस विधि में प्रत्येक तत्व के परमाणुओं की संख्या तत्व के संकेत के तुरंत बाद थोड़े ऊपर (सुपर-स्क्रिप्ट) लिखी जाती थी। पानी का सूत्र H^2O हुआ। आजकल हम इन्हें ऊपर की बजाए थोड़ा नीचे (सब-स्क्रिप्ट) लिखते हैं। यह व्यवस्था लीबिग नामक रसानज्ञ ने 1834 में शुरू की थी। अब ज़रा आगे बढ़ते हुए पहले पानी के सूत्र के विकास पर एक नज़र डाल लें:

▽ ⊙⊙ HO $\underline{H}O$ H^2O H_2O
~~H~~O
$\dot{H}O$
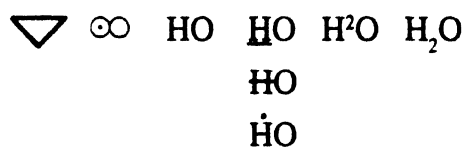
अब यह देखा जा सकता है कि पानी का सूत्र क्या माएने रखता है। पहला सूत्र तो हमें बस यह बताता है कि पानी है। दूसरा और तीसरा सूत्र डाल्टन का है जो पानी के रासायनिक संघटन का प्रतीक है। इस सूत्र का आशय है कि पानी के एक अणु में हाइड्रोजन का एक परमाणु है और ऑक्सीजन का भी एक परमाणु है। दूसरे शब्दों में पानी के एक अणु में हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के परमाणुओं की संख्या बराबर है। यह पानी का एक मोल है।

चौथा सूत्र बर्ज़ीलियस का है। दरअसल

सूत्रों में छिपे सूत्र

संकेतों को लिखने में रोमन वर्णमाला के अक्षरों का प्रयोग किया जाता है। तत्व के नाम का पहला अक्षर ही उसका संकेत है। जब दो तत्वों के नाम एक ही अक्षर से शुरू हों तो उनमें से किसी एक तत्व के नाम के पहले दो अक्षर ले लिए जाते हैं। जैसे कार्बन व क्लोरीन क्रमशः C और Cl कहलाते हैं। ध्यान देने वाली बात यह है कि पहला अक्षर कैपिटल और दूसरा छोटा लिखा जाता है। कई तत्वों के नाम और उनके संकेतों में आपको प्रथमाक्षर नहीं मिलेगा। कारण यह है कि इन तत्वों के जिन नामों के आधार पर संकेत बने हैं वे नाम अंग्रेज़ी के नहीं हैं तथा हम उनका उपयोग नहीं करते। जैसे सोडियम, टंगस्टन, पोटेशियम को Na, W, K द्वारा दर्शाया जाता है। ये इनके अन्य भाषाओं के नाम नैट्रियम, वोल्फ्रम और कैलीयम के प्रतीक हैं।

सूत्र लिखते समय उस पदार्थ में उपस्थित तत्वों के नाम लिखते हैं। आमतौर पर नाम 'ज़्यादा धनात्मक' से 'कम धनात्मक' व 'ऋणात्मक' व 'ज़्यादा ऋणात्मक' के क्रम में लिखा जाता है। प्रत्येक तत्व के बाद (यानी दाहिनी ओर) थोड़ा नीचे (यानी सबस्क्रिप्ट के रूप में) लिखे अंक से पता चलता है कि किसी अणु में उस तत्व के कितने परमाणु हैं। यदि कोई अंक नहीं लिखा हो तो मानकर चलते हैं कि उस तत्व का एक ही परमाणु मौजूद है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि किसी सूत्र के बाईं ओर जब कोई संख्या लिखी जाती है तो वह उस पूरे अणु पर लागू होती है। मान लीजिए सूत्र के बाईं ओर 2 लिखा है, तो इसका मतलब होगा कि उस पूरे पदार्थ के दो मोल दर्शाए जा रहे हैं।

एक उदाहरण से बात को स्पष्ट करते हैं।

$2\,C_6H_6O_6$
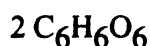
इसका अर्थ होगा कि – उक्त पदार्थ के एक अणु में कार्बन के 6, हाइड्रोजन के 6 तथा ऑक्सीजन का एक परमाणु है और इस पदार्थ के दो मोल लिए गए हैं।

अब आप बताइए O_2 व 2 O के अर्थ क्या हैं व इनमें क्या फर्क है?

बर्ज़ीलियस का सूत्र परमाणु संख्या नहीं बल्कि आयतनों का अनुपात दर्शाता था। गैलुसेक के प्रयोगों के आधार पर बर्ज़ीलियस का निष्कर्ष था कि गैसों के समान आयतनों में परमाणुओं की संख्या बराबर होती है। बाद में पता चला कि यह निष्कर्ष गलत था। वास्तविकता यह थी कि गैसों के बराबर आयतनों में अणुओं की संख्या बराबर होती है।

बहरहाल यह तो स्पष्ट ही है कि भाषा व तर्क के लिहाज़ से डाल्टन व बर्ज़ीलियस एक ही बात कह रहे थे कि पदार्थ का सूत्र उनके रासायनिक संघटन का प्रतीक है। इससे हमें पता चलता है कि पदार्थ के एक अणु में कौन-कौन से तत्व हैं और उन तत्वों का क्या अनुपात

है। ये तत्व इसी अनुपात में क्यों हैं यह एक अलग विषय है। इसका संबंध तत्वों की संयोजन क्षमता, इलेक्ट्रॉनिक बनावट आदि से है जो कि फिलहाल हमारा विषय नहीं है।

सूत्रों की बात करने के बाद थोड़ी देर सांस ले लेना ठीक होगा। एक बार जब पदार्थों के सूत्र लिखने की परम्परा चल पड़ी तो इसके दो प्रभाव हुए। पहला प्रभाव तो यह हुआ कि रसायनशास्त्री अब पदार्थों की रासायनिक बनावट जानने को बेचैन होने लगे। अब बनावट की बात मात्र नामों के आधार पर नहीं बल्कि उनके अनुपातों के आधार पर होने लगी। आधुनिक रसायन शास्त्र में यह एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। दूसरा प्रभाव यह हुआ कि पदार्थों की परस्पर क्रियाओं का मात्रात्मक स्वरूप समझने में इससे बहुत मदद मिली। स्टॉईकियोमेट्री नामक शाखा शुरू हुई। रासायनिक क्रियाओं को समीकरण के रूप में दिखाने की प्रथा शुरू हुई।

एक बार फिर हम लेवोज़िए के ऋणी हैं। उन्होंने ही सर्वप्रथम रासायनिक समीकरण का सूत्र दिया था। दरअसल रसायनशास्त्र को मात्रात्मक रूप देकर परवान चढ़ाने का महत्त्वपूर्ण काम लेवोज़िए ने ही किया। डाल्टन ने उसे एक सिद्धांत में पिरोया। अलबत्ता रासायनिक समीकरणों के द्वारा रासाय-निक क्रियाओं को दर्शाने का तरीका नियमित रूप से 1830 के बाद ही अपनाया गया। परन्तु समीकरण फिर कभी करेंगे क्योंकि उसके लिए थोड़ा और व्याकरण सीखना पड़ेगा।

सूत्र निकालने का तरीका

यदि आपको तत्वों के परमाणु भार पता हैं और यह पता है कि एक तत्व का कितना भार दूसरे तत्व के किसी भार से क्रिया करता है तो आप सूत्र की गणना कर सकते हैं। उदाहरण के लिए मान लीजिए किसी पदार्थ के विश्लेषण से निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं:

सोडियम	18.8 प्रतिशत
क्लोरीन	29.0 प्रतिशत
ऑक्सीजन	52.2 प्रतिशत

इससे यह तो स्पष्ट है कि उसके सूत्र में सोडियम, क्लोरीन तथा ऑक्सीजन के नाम आएंगे। पर अभी यह पता नहीं कि ये किस अनुपात में हैं। अतः हम इनका सूत्र $Na_xCl_yO_z$ लिख देते हैं। x, y और z पता लगाना हैं। x, y, z से हमें पता चलेगा कि इस यौगिक के एक अणु में Na, Cl व O के कितने-कितने परमाणु हैं। या दूसरे शब्दों में यह पता चलेगा कि एक मोल यौगिक में Na, Cl व O के कितने मोल हैं।

चलिए पहले पता लगाते हैं कि $Na_xCl_yO_z$ का अणु भार यदि 100 होता तो

x, y व z के मान क्या होते। यह पता लगाने के लिए प्रत्येक तत्व के प्रतिशत वज़न में हम उस तत्व के परमाणु भार का भाग दे देंगे।

$$x = 18.8/23$$

$$y = 29.0/35.5$$

$$z = 52.0/16$$

$x = 0.818$, $y = 0.818$, $z = 3.27$

मतलब यदि $Na_x\, Cl_y\, O_z$ का अणुभार 100 है तो उसके एक अणु में Na के 0.818 परमाणु, Cl के 0.818 परमाणु तथा O के 3.27 परमाणु होंगे। तो उस पदार्थ का सूत्र होगा $Na_{0.818}\, Cl_{0.818}\, O_{3.27}$

यह एक असुविधाजनक सूत्र है। यदि सारी सबस्क्रिप्ट पूर्णांक में आ जाएं तो अच्छा है। वैसे भी हम जानते हैं कि परमाणु पूरे के पूरे ही क्रिया करते हैं। यदि पूरे सूत्र में 0.818 का भाग दे दें तो सूत्र कुछ ऐसा होगा:

$Na_1\, Cl_1\, O_4$
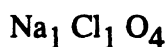
यह उस पदार्थ का सरलतम सूत्र कहलाता है। हमें अब यह पता है कि Na, Cl, O के परमाणुओं का अनुपात 1:1:4 है। मगर वास्तविक संख्या 1, 1, 4 भी हो सकती है, 2, 2, 8 भी या 3, 3, 12 भी हो सकती है। इनमें से सही संख्या का चयन करने का काम उस यौगिक के अणुभार के आधार पर किया जा सकता है। मगर जब तक अणुभार नहीं मालूम तब तक सरलतम अनुपात सूत्र से ही संतोष करना होगा।

यहां एक मान्यता (या रूढ़ि) और बता देना ज़रूरी है कि जब किसी सूत्र में किसी तत्व की सबस्क्रिप्ट (यानी परमाणुओं की संख्या)1 होती है तो उसे नहीं लिखा जाता। 1 से ज़्यादा होने पर उसे लिखा जाता है। इस रूढ़ि के अनुसार $Na_1Cl_1O_4$ को हम $NaClO_4$ भी लिख सकते हैं। यदि यही इस यौगिक का सही अणु सूत्र हो तो उसका अणुभार कितना होगा?

तत्व	सूत्र में उसकी मोल संख्या	परमाणु भार	सूत्र में उस तत्व का कुल भार
Na	1	23	23
Cl	1	35.5	35.5
O	4	16	64

अर्थात $NaClO_4$ का अणु भार 122.5 आएगा। वास्तव में यही इसका वास्तविक अणुभार है। अतः सरलतम सूत्र ही इसका अणु सूत्र भी है। मगर यदि इसका अणुभार 245 होता तो इसका अणु सूत्र $Na_2\, Cl_2\, O_8$ हो जाता।

सुशील जोशी — होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध।

किसमें प्रोटीन, कहां वसा .....

सुधा हार्डीकर

शरीर के लिए ज़रूरी तत्वों की जांच के कुछ आसान तरीके।

अक्सर हम पढ़ते रहते हैं कि प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट आदि पदार्थ हमारे शरीर के लिए कितने ज़रूरी हैं।

किस चीज़ में ये हैं, किसमें नहीं हैं इसे पता करने के वैसे तो कई तरीके हैं लेकिन उनमें से ज़्यादातर में ऐसे रसायनों की ज़रूरत होती है जिनका मिलना आसान नहीं होता या फिर परीक्षण प्रक्रिया ही काफी जटिल होती है। लेकिन हम यहां जिन परीक्षणों की बात करने जा रहे हैं उन्हें किसी भी हाईस्कूल की रसायन प्रयोगशाला में उपलब्ध रसायनों और अन्य साधारण सामग्री की सहायता से आसानी से किया जा सकता है, बल्कि कुछेक के लिए तो प्रयोगशाला की भी ज़रूरत नहीं होगी।

प्रोटीन परीक्षण

1. कॉपर सल्फेट (नीला थोथा) : कॉपर सल्फेट का 2% घोल यानी 100 मि.ली. पानी में 2 ग्राम कॉपर सल्फेट मिलाकर घोल बनाएं।

2. सोडियम हाइड्रॉक्साइड (कास्टिक सोड़ा): सोडियम हाइड्रॉक्साइड का 10% घोल यानी 100 मि.ली. पानी में 10 ग्राम सोडियम हाइड्रॉक्साइड।

जिस पदार्थ का परीक्षण करना हो उसकी 10 बूंद एक साफ परखनली में लें। यदि पदार्थ ठोस हो तो उसकी चने के दाने के बराबर मात्रा पीसकर परखनली में लें और उसमें 10 बूंद पानी डालकर अच्छी तरह हिला लें।

इसमें 2 बूंद कॉपर सल्फेट का घोल और 10 बूंद कास्टिक सोड़ा का घोल डालकर अच्छी तरह हिलाइए। इसके बाद परखनली को पांच मिनट तक यूं ही रखा रहने दीजिए।

अगर घोल का रंग जामुनी या बैंगनी हो जाए तो जिस पदार्थ का परीक्षण कर रहे हैं, उसमें प्रोटीन मौजूद है।

वसा (चरबी) परीक्षण

जिस पदार्थ का परीक्षण करना है उसकी थोड़ी-सी मात्रा लेकर एक कागज़ के टुकड़े पर हल्के से रगड़ें।

यदि कागज़ अल्प पारदर्शक बन जाए और कुछ समय तक सूखने पर भी अल्प पारदर्शक बना रहे तो उस पदार्थ में वसा है।

कार्बोहाइड्रेट्स

इस हिस्से को ध्यान से करना होगा क्योंकि कार्बोहाइड्रेट्स के तहत बहुत-सी चीज़ें आती हैं – स्टार्च, सेल्यूलोज़ और विभिन्न तरह की शर्कराएं।

मनुष्य के लिए पोषक पदार्थ के रूप में सेल्यूलोज़ उपयोगी नहीं है इसलिए यहां पर सिर्फ स्टार्च एवं शर्कराओं का परीक्षण करेंगे।

1. स्टार्च (मंड) परीक्षण:

जिस वस्तु का परीक्षण करना हो उस पर आयोडीन के हल्के घोल की तीन-चार बूंदें डालिए। दवाई की दुकान पर उपलब्ध टिंक्चर आयोडीन भी इस्तेमाल कर सकते हैं। यदि गहरा नीला या काला रंग हो जाए तो उस पदार्थ में स्टार्च (मंड) मौजूद है।

2. शर्कराएं : रासायनिक गुणों के आधार पर शर्कराओं को दो समूहों में बांटा जा सकता है।

अ. ऐसी शर्कराएं जो अपचायक गुण प्रदर्शित करती हैं। (Reducing Sugars) जैसे कि ग्लूकोज़, फ्रुकटोज़, लेक्टोज़, माल्टोज़ आदि। मीठे फल, शहद और फूलों के मीठे रस में ग्लूकोज़ व फ्रुकटोज़ पाई जाती हैं। खून और मधुमेह (डायबिटीज़) के रोगियों के मूत्र में ग्लूकोज़ होता है। लेक्टोज़ दूध में पाई जाने वाली शर्करा है।

ब. ऐसी शर्कराएं जो अपचायक नहीं होतीं। (Non-Reducing Sugars) जैसे कि सुक्रोज़। सुक्रोज़ चीनी (शक्कर), गन्ना, चुकंदर एवं मीठे कंद में पाई जाती है।

अपचायक शर्कराओं के परीक्षण के लिए आवश्यक रसायनः

- कॉपर सल्फेट (नीला थोथा) का 5% घोल, यानी कि 100 मि.ली. पानी में 5 ग्राम कॉपर सल्फेट।
- सोडियम हाइड्रॉक्साइड (कास्टिक सोड़ा) का 10% घोल, यानी 100 मि.ली. पानी में 10 ग्राम सोडियम हाइड्रॉक्साइड।

अगर परीक्षण किसी द्रव पदार्थ जैसे दूध, फल का रस आदि से करना हो तो 2-3 बूंद द्रव एक परखनली में लेकर उसमें एक मिली लीटर पानी मिलाकर घाल तयार कर लें।

इसी तरह यदि गूदेदार फल का परीक्षण करना हो तो चने के दाने बराबर फल का मसला हुआ गूदा 3-4 मि.ली. पानी के साथ अच्छी तरह हिला लें। इस द्रव को निथार लें और करीब एक मिली लीटर द्रव परखनली में लेकर परीक्षण करें।

यदि ठोस पदार्थ का परीक्षण करना हो तो चने के दाने के बराबर पदार्थ को एक मिली लीटर पानी में घोलकर घोल तैयार करें।

परीक्षण करने के लिए तैयार किए गए इस घोल में कॉपर सल्फेट के घोल की 5-6 बूंद और सोडियम हाइड्रॉक्साइड के घोल की 10 बूंद मिलाकर एक-दो मिनट तक गर्म करें।

गर्म करने पर अगर नारंगी अवक्षेप बनता है तो इसका अर्थ है कि पदार्थ में ग्लूकोज़, फ्रुक्टोज़, माल्टोज़, लेक्टोज़ जैसी कोई अपचायक शर्करा उपस्थित है।

*

अगर शर्करा के पहले परीक्षण में नारंगी अवक्षेप नहीं आता तो भी इस बात की संभावना तो रहती ही है कि पदार्थ में सुक्रोज़ मौजूद हो, जो अपचायक नहीं होता। उसकी जांच के लिए भी कॉपर सल्फेट और सोडियम हाइड्रॉक्साईड के ऊपर बनाए गए घोल इस्तेमाल करने होंगे। उनके अलावा तनु सल्फ्यूरिक अम्ल (गंधक का अम्ल) की ज़रूरत भी होगी। परखनली में परीक्षण के लिए तैयार किया गया एक मि.ली. घोल लेकर उसमें 2-3 बूंद तनु सल्फ्यूरिक अम्ल मिलाकर दो मिनट तक उबालें। अब इस घोल में 5-6 बूंद कॉपर सल्फेट का घोल और 10 बूंद सोडियम हाइड्रॉक्साईड घोल मिलाकर फिर से गर्म करें। अगर नारंगी अवक्षेप मिलता है तो सुक्रोज़ की उपस्थिति की पुष्टि होती है। पदार्थ में स्टार्च होने पर भी नारंगी अवक्षेप मिलेगा।

(सुधा हार्डीकर — होशंगाबाद के नर्मदा महाविद्यालय में रसायनशास्त्र की प्राध्यापक)

मंत्र, हवाबाज़ी और धुंध

अनिता रामपाल

हवा को लेकर एक अध्याय चल रहा था। शिक्षक ने मशीनी ढंग से कुछ तथ्यों का उच्चारण किया और काफी कर्मठता से पाठ्य-पुस्तकों में लिखी बातों को दोहराया। एक सांस में हवा के सारे गुणधर्म बाहर आ गए:

"हवा सब जगह है।"

"हवा स्थान घेरती है।"

"हवा की अपनी कोई आकृति नहीं होती।"

"हवा गैसों का मिश्रण है।"

"गैस, पदार्थ की एक अवस्था है।"

इन में से हर एक वाक्य ब्रह्मवाक्य है जिसे समझने की कोशिश किए बगैर निष्ठापूर्वक दोहराया जाता है। वास्तव में आठ साल के बच्चों से ऐसे वाक्य ज़ोर-ज़ोर से मंत्रों की तरह बुलवाए-रटवाए जाते हैं। यदि वे कोशिश करें तो भी ऐसे

हवा जैसी अमूर्त अवधारणा को तीसरी-चौथी में पढ़ाने लगना कितना सही है? उस उम्र में रटे हुए ब्रह्मवाक्यों से बच्चों की क्या समझ बनती है? क्या बच्चों की उम्र और उनकी समझ पाने की क्षमता में कोई संबंध है? ऐसे सवालों को लेकर विभिन्न कक्षाओं में बच्चों के साथ की गई बातचीत का विश्लेषण।

गूढ़ वाक्यों का सिर-पैर नहीं समझ पाएंगे।

"हवा सब जगह है।" क्या वाकई है? मैंने बच्चों से पूछा, "क्या तुम्हारे झोले में भी हवा है?" अधिकतर ने साफ इंकार कर दिया। कुछ जिज्ञासु, ऊधमी बच्चों ने ज़रूर अपने झोलों में झांककर देख लिया कि कहीं गुपचुप हवा अंदर घुस तो नहीं गई।

कक्षा सात के (12 वर्षीय) बच्चों का भी मानना था कि "खाली गिलास में हवा नहीं है।" उनसे वह प्रयोग करने को कहा गया था जिसमें एक गिलास के पेंदे में कागज़ ठूंसकर उसे औंधा करके पानी में डुबोने पर भी कागज़ सूखा ही रहता है। इस प्रयोग से पता चलता है कि हवा स्थान घेरती है। बच्चों का कहना था कि गिलास में हवा तब घुस गई होगी जब उसे औंधा करके डुबाया जा रहा था। दिलचस्प बात ये है कि 12 वर्षीय बच्चों के एक अन्य समूह ने भी यही प्रयोग किया और नाटकीय रूप में यह निष्कर्ष निकाला कि – खाली बर्तन में हवा होती है। यह निष्कर्ष बेशक सही था मगर यहां भी बच्चों की हवा के स्थान घेरने के बारे में कोई समझ बनती नहीं दिखाई दी।

प्राथमिक स्कूलों में बच्चों को ऐसे सैद्धांतिक सूत्र देने की निरर्थकता आसानी से समझ में आती है। विभिन्न देशों में किए गए अनुसंधानों से पता चलता है कि 12-14 साल के बच्चे भी इस सूत्र को स्वीकार नहीं कर पाते कि हवा हर जगह है। उनका मानना है कि बंद बर्तन या पिचके टायर में हवा नहीं हो सकती। यह देखा गया है कि बच्चे हवा को आमतौर पर गति या बहाव से जोड़कर देखते हैं, जैसे बहती हुई हवा।

यानी यदि आपको गिलास में हवा भरनी है तो हमें गिलास का मुंह हवा की उल्टी दिशा में करके दौड़ना होगा। तब क्यों हम 'ईश्वर सर्वत्र है' की तर्ज़ पर 'हवा सब जगह है' का राग अलापते जाते हैं? जिस तरह प्रथम वाक्य पर कोई सवाल नहीं हो सकता, वह किसी सत्यापन का मोहताज़ नहीं है, उसे आस्था के साथ स्वीकार करना होता है, ठीक उसी तरह के रुतबे की मांग
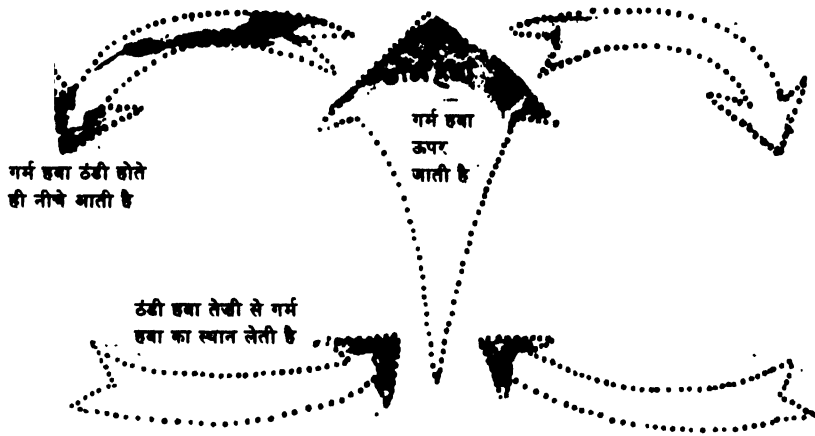
'हवा का सब जगह होना' भी करता है।

आखिर विज्ञान शिक्षण संबंधी लेखन में क्यों ऐसे 'ज्ञान कैप्सूलों' का चलन जारी है, जो बच्चों की सहज तर्क क्षमता को नकारते हैं। वास्तव में इस लेखन को हम जितना नज़दीक से देखते हैं, उतना ही यह बच्चों की कुदरती शैली और अभिव्यक्ति से बेगाना नज़र आता है। इसकी वजह से बच्चे क्रमशः खामोश होते जाते हैं और प्रश्न उठाने या आलोचना करने की उनकी क्षमता कुंद होती जाती है। ऊपर से, सीखने वाले को कोई चीज़ समझ में न आए या वह विमुख हो जाए तो इसे उसकी निजी खामी करार दिया जाता है। बच्चे ही नहीं, वयस्क लोग भी जब विज्ञान की भाषा से जूझ नहीं पाते तो इसे अपनी अकल का अभाव मान लेते हैं। लेखन में निहित संवाद की दिक्कतों पर कदापि उंगली नहीं उठाई जाती। उदाहरण के लिए मौसम से संबंधित पाठों में यह बताया जाता है कि धूप के कारण पृथ्वी के पास की हवा गर्म हो जाती है। गर्म हवा ऊपर उठने लगती है और ठंडी हवा आकर उसकी जगह ले लेती है। ठंडी हवा गर्म हवा को धकेल देती है। यह बात समझने के लिए रेखाचित्र भी बना होता है।

इसे समझाने के लिए बनाए गए चित्र में तीन सांकेतिक वक्राकार तीर बनाकर उन पर लिखा गया है कि 'गर्म हवा ठंडी होने पर नीचे आती है' और 'ठंडी हवा गर्म हवा द्वारा घेरी गई जगह में पहुंच जाती है।'

ज़ाहिर है कि यह भाषा छोटे बच्चों के लिए नहीं लिखी गई है। हर वाक्य कई जटिल अवधारणाओं की श्रृंखला प्रस्तुत करता है, जो आपस में कई सारी उप-अवधारणाओं के माध्यम से एक दूसरे से जुड़ी होती हैं। मसलन इस वाक्य का क्या अर्थ लगाया जाए कि 'गर्म हवा ठंडी होने पर नीचे आती है'। इस अवधारणा से अपरिचित किसी वयस्क को भी कई सारी उप-अवधारणाओं का सहारा लेना पड़ेगा। और इस प्रक्रिया में हवा
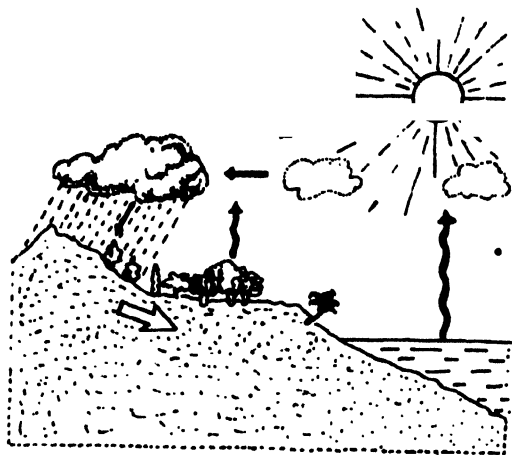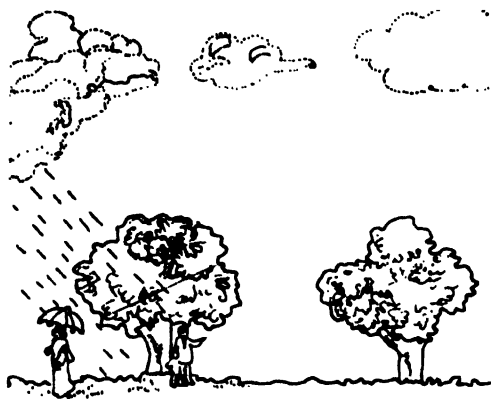
तीसरी की विज्ञान की किताब में दिऐ गए दो और चित्र; पानी का गिरना (बाएं); पानी चक्र (दाएं)।

के गर्म होने, पृथ्वी की गर्मी हवा को दिए जाने, गर्म होने पर हवा का फैलाव यानी आयतन में वृद्धि, परिणामस्वरूप इसका कम घना होना, अपेक्षाकृत ठंडी हवा के ऊपर इसका तैरना तथा एक बार ऊपर जाने के बाद यह गर्म हवा कैसे अपनी गर्मी गंवाती है और इसकी गति की दिशा बदलती है आदि जैसी अनेकों उप-अवधारणाएं उजागर होती जाएंगी। इनमें से कोई भी उप-अवधारणा इस उम्र के बच्चे पचा नहीं पाते। लिहाज़ा यह कदापि उचित नहीं है कि बच्चे विज्ञान शिक्षा के नाम पर ऐसी लू के थपेड़े सहें।

'जलवाष्प पानी का गैसीय रूप है' और 'गीली वस्तुएं सूखती हैं, जब उनमें उपस्थित पानी जलवाष्प बनकर वातावरण में चला जाता है' जैसे कथन भी फर्जी व्याख्या के नाम पर सूक्तियों जैसे हैं। सात वर्ष का एक बच्चा पूछता है, 'यह जलवाष्प क्या है?' और उसकी पाठ्य-पुस्तक में दिया गया और शिक्षक द्वारा दोहराया जाने वाला जवाब है कि, 'जलवाष्प जल का गैसीय रूप है।' यह कथन मात्र एक शब्द को दूसरे शब्दों में व्यक्त करने का तरीका है। यह कोई व्याख्या नहीं है। क्या किसी ने यह जानने की ज़हमत उठाई है कि बच्चे 'पानी का गैसीय रूप' से क्या समझते हैं?

क्यों 'व्याख्या' या 'परिभाषा' के नाम पर इन वाक्यों का इस्तेमाल करके बच्चों की समझने की प्रक्रिया को अवरुद्ध किया जाता है? हमारे विशेषज्ञों की विषय सूची में 'समझ' को कभी जगह मिली ही नहीं है और इसलिए उन्हें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि बच्चे समझ नहीं पाते। आपने इस बात पर ध्यान दिया होगा

कि बच्चे कई मर्तबा इन शब्दों का उच्चारण तक नहीं कर पाते।

बच्चे और हवा का दबाव

हवा के दबाव की अवधारणा काफी मुश्किल है। 14 वर्ष उम्र तक के बच्चे दबाव को गति से संबंधित मानते हैं क्योंकि वे बल को भी गति के साथ जोड़कर देखते हैं। गतिविधि आधारित खोज पद्धति के अनुरूप तैयार होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में, कक्षा-7 की पाठ्यपुस्तक 'बाल-वैज्ञानिक' में 'हवा' से संबंधित एक अध्याय है। इस पाठ में कई सारे प्रयोग दिए हैं, जो बच्चे स्वयं करते हैं। परन्तु इनके आधार पर बहुत सारे निष्कर्ष निकालने को नहीं कहा गया है। इसी पुस्तक के अन्य अध्यायों में जब बच्चे प्रयोग करते हैं तो उनसे उम्मीद की जाती है कि वे उनके आधार पर गुणधर्मों या सिद्धांतों पर गहराई से चर्चा करेंगे और लिखेंगे। मगर 'हवा' के पाठ में मात्र उम्मीद यह है कि वे अहसास के स्तर पर कुछ समझ बना पाएंगे। वे कुछ आसान सवालों के उत्तर ज़रूर खोजते हैं परन्तु सिर्फ अपने लिए। कोई मानक उत्तर हासिल करने के लिए नहीं। अध्याय के उपशीर्षकों में ज़रूर लिखा है कि 'हवा के दबाव के प्रयोग' मगर यह समझाने का कोई आग्रह नहीं है कि हवा के दबाव का अर्थ क्या होता है।

एक प्रयोग में बच्चे किताबों के एक ढेर के नीचे पोलीथीन की थैली को फुलाकर किताबों को ऊपर उठा देते हैं। इसके बाद उन्हें 'बल और भार' नामक अध्याय की याद दिलाई जाती है और सरसरी तौर पर यह ज़िक्र किया जाता है कि थैली में भरी हवा दबाव डालती है और किताबों को ऊपर उठा देती है। उम्मीद यह है कि गुब्बारों से खेलते हुए या सिरिंज, शीशियों या अपने द्वारा बनाए गए हैण्ड-पम्प आदि से खेलते हुए वे इन

कहां है हवा?

बाल वैज्ञानिक का पाठ ऐसे शुरू होता है

बैसाख-जेठ की गर्म हवाओं के बाद आषाढ़ की पानी भरी हवाएं तुम्हें ज़रूर याद होंगी। और जाड़े की रातों में उसी हवा से हड्डियों तक को ठंड लगती है। जब हवा पीछे से हो तो साइकल बिना ज़ोर लगाए ही सरपट भागी जाती है। जब सामने की हवा होती है तो वही साइकल चलाने में दम फूल जाता है। यही हवा अंधड़ों के रूप में धूल, कंकड़ से आकाश भर देती है और कभी-कभी तो बड़े-बड़े पेड़ तक उखाड़ फेंकती है। हवा के ऐसे कई चमत्कार तुम्हारे दिमाग में ज़रूर आ रहे होंगे।

परंतु यदि हवा बिल्कुल नहीं बह रही हो, तो तुम कैसे पहचानोगे कि किसी

(अगले पेज पर)

विचारों के प्रति एक अहसास बना पाएंगे और इन्हें स्पष्ट रूप में व्यक्त करने का काम किसी अगले पड़ाव पर करेंगे।

चूंकि होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में परीक्षा खुली किताब प्रणाली से होती है इसलिए यह आशंका भी नहीं रहती कि उनसे चंद गूढ़ वाक्य दोहराने को कहा जाएगा। खुली किताब परीक्षा होने पर प्रश्नों की प्रकृति ही बदल जाती है।

हवा के अध्याय का उपरोक्त स्वरूप तय करने के आधार में है बच्चों के साथ हुए कई अनुभव।

जैसे कक्षा में जब पूछा जाता है कि उन्हें हवा की उपस्थिति का पता कैसे चलता है, तो वे तत्काल जवाब देते हैं:

'हवा में धूल उड़ाकर'
'पतंग उड़ाकर'
'जब सांस लेते हैं', वगैरह।

परन्तु जब हवा बिल्कुल ठहरी हुई हो, जैसे किसी पेड़ के नीचे, तो कैसे पता चलता है? या किसी कमरे के अन्दर? ये सरल से सवाल उनकी किताब में ही चर्चा शुरू करने के लिहाज़ से दिए गए हैं।

एक बच्चे ने कुछ देर सोचकर कहा, 'हम लाइट में धूल देख सकते हैं।'

यह कहते हुए उसने खिड़की से आ रही धूप में चमकते धूल के कणों की ओर इशारा किया। उसके जवाब से

स्थान पर हवा है कि नहीं? एक पेड़ के नीचे जिसकी एक भी पत्ती नहीं हिल रही? एक कमरे में? एक खाली गिलास में? एक बंद बोतल में? एक कांच की नली में?

हवा को हम देख नहीं सकते पर ऐसे प्रयोग ज़रूर कर सकते हैं जिनसे बगैर देखे भी हमें हवा के गुणों के बारे में बहुत कुछ मालूम हो सकता है।

बाल वैज्ञानिक का हवा वाला प्रयोग

हवा का दबाव: प्रयोग-1: मोटे प्लास्टिक की एक थैली लो। आजकल जिन थैलियों में दूध मिलता है वैसी थैली अच्छी रहेगी। चित्र में दिखाए अनुसार एक कांच की नली या पुराने बॉल पेन का मुंह इस थैली में डालकर धागे या वॉल्व ट्यूब से कसकर बांध दो। थैली के ऊपर एक-दो किताबें रखो। अब नली से फूंक मारकर थैली में हवा भर दो।

स्पष्ट था कि बहती हवा की तरह यहां भी हम किसी गोचर (दर्शनीय) प्रभाव को ही खोज रहे हैं। अलबत्ता वे अभी भी पूरी तरह आश्वस्त नहीं थे कि बंद कमरे के अंदर भी हवा है। अंततः उनके शिक्षक ने उनसे हाथ हिलाकर हवा महसूस करने को कहा। सबके सब इस मज़ेदार काम में मशगूल हो गए।

मैंने कई तरह से कोशिश की कि उनके जवाबों से यह समझ पाऊं कि वे हवा के दबाव के बारे में क्या सोचते हैं। बार-बार मुझे यही पता चला कि अपने आप वे कभी ऐसे शब्दों का इस्तेमाल नहीं करते और न ही इस बाबत उनकी कोई पक्की, सहज धारणा ही है।

मसलन, इस आसान से सवाल को ही लें – "जब फूले हुए गुब्बारे का मुंह खोलते हैं तो हवा तुरन्त बाहर क्यों निकल जाती है?" इसके कई जवाब आए:

'लीक हो जाती है।'

'हवा से हवा मिल जाती है।'

'हमने मुंह खोल दिया था।'

'बाहर की हवा से मिलना चाहती है।'

'फुग्गा तना रहता है।'

'वही रास्ता मिला।'

'फुग्गे में समा नहीं पाती।'

जब मैंने बार-बार यह पूछा कि फुग्गे की हवा बाहर क्यों निकलती है जबकि गिलास की हवा नहीं निकलती तो जवाब आया, 'हमने यह हवा भरी थी, यह हमारे अंदर की हवा थी और बाहर निकलना चाहती है।'

थैली में हवा भरने पर क्या हुआ?
पुस्तकों पर नीचे की ओर गुरुत्व बल लग रहा होगा – ऐसा तुमने छठी कक्षा में 'बल और भार' अध्याय में सीखा था। पुस्तकों को ऊपर उठाने के लिए उन पर गुरुत्व बल की विपरीत दिशा में कोई बल ज़रूर लगा है।
थैली में भरी हवा थैली के अंदर की सतहों पर दबाव लगाती है, जिससे पुस्तकें ऊपर को उठ जाती हैं।

प्रयोग-2: एक रबर की नली लो और उसके एक सिरे पर फुग्गा चढ़ा कर उसे धागे से कसकर बांध लो। रबर नली द्वारा फूंक कर फुग्गे को फुला लो और उसके खुले मुंह को मोड़ कर बंद कर लो जिससे फुग्गे से हवा निकलने न पाए। अब रबर की नली के बंद किए हुए सिरे को पानी से भरे बर्तन में डुबोकर उसका मुंह खोल दो।

फुग्गे से निकली हुई हवा का तुम्हें कैसे पता चलता है?

फुग्गे से हवा क्यों निकली?

ऊपर किए प्रयोग में हवा के बुलबुले ऊपर की ओर क्यों उठते हैं?

यदि साइकल की ट्यूब में पंक्चर हो जाए तो तुम उसे कैसे ढूंढोगे?

चाहे जितनी कोशिश की कि वे यह देख पाएं कि अंदर की हवा ज़्यादा 'दबाव' पर थी, मगर उन्होंने इस पर ध्यान देने से इन्कार कर दिया। दबाव की बात के सबसे निकट जो बात उन्होंने कही वह फुग्गे के तना होने की थी।

एक अन्य सवाल नली में से पानी खींचने या उसमें फूंकने से संबंधित था। उन्होंने बस इतना कहा, "हम हवा खींचते हैं तो पानी भी साथ में खिंच जाता है।"

इसी पुस्तक में एक सुन्दर प्रयोग है जिसमें बोतल में लगी एक नली में से हवा खींचने पर दूसरी नली पर लगा फुग्गा फूल जाता है। इसका असर काफी नाटकीय होता है। यह अवलोकन अनपेक्षित है तथा बच्चे इस पर सोचने को प्रेरित होते हैं। बहरहाल इसके जवाब भी अस्पष्ट 'यहां की हवा' और 'वहां की हवा' कह कर संक्षिप्त व अस्पष्ट रूप में दिए जाते हैं। एक लड़की लालिमा (उम्र 13 वर्ष) ने काफी स्पष्ट उत्तर दिया मगर उसने भी हवा के दबाव की नहीं, मात्रा की बात कही:
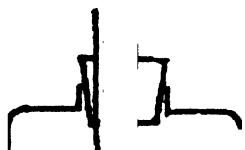
"जब हम खींचते हैं तो बोतल की हवा बाहर आ जाती है। अन्दर की हवा कम हो जाती है और बाहर की हवा दूसरी नली से अन्दर आती है और फुग्गा फूल जाता है।"

ज़ाहिर है कि बच्चे स्वाभाविक रूप से हवा के दबाव के बारे में नहीं सोचते। खासतौर से जब हवा थमी हुई है या संतुलन की स्थिति में है तब तो वे दबाव की बात सोच ही नहीं सकते। जब हवा किसी दृश्य प्रभाव के बगैर उपस्थित हो, तो वे हवा के बारे में सोचना भी मुश्किल पाते हैं। इसलिए यह बहुत ज़रूरी है कि उन्हें अपने विचारों को टटोलने का मौका मिले, वे अपने विचार आज़ादी से और बेखौफ मुखर कर सकें। स्पष्टता व सटीकता को प्रोत्साहित करने के लिए ज़रूरी है कि उन्हें बोलकर सोचने का मौका मिले और अनौपचारिक रूप से आज़माइशी भाषा का उपयोग करने की छूट मिले। अन्ततः छात्रों को विज्ञान की एक बेगानी भावभंगिमा से परिचित होना ही पड़ेगा और वे शायद उस पर महारत भी हासिल करें। परन्तु यह तभी हो सकता है जब वे अवधारणाओं, खासकर अपनी सहज बुद्धि के विपरीत जाने वाली अवधारणाओं, की समझ को काफी हद तक आत्मसात कर चुकें।

एक व्यापक समस्या

12 वर्षीय फ्रांसीसी बच्चों पर किए गए एक अध्ययन से भी पता चला कि वे भी हवा को आमतौर पर गति से जोड़कर ही देखते हैं और "बच्चों को जब तक स्कूल में गैसों के

वायुमण्डल का दबाव एक ऐसी अवधारणा है जो बच्चों व वयस्कों दोनों को समान रूप से भ्रमित करती है। इंग्लैण्ड में 15 वर्षीय बच्चों के साथ किए गए एक अध्ययन से उजागर हुआ कि उन्हें भी इस अवधारणा से जुड़े सवालों के जवाब देने में दिक्कत आती है।

साथ प्रयोग करने का मौका न मिले, तब तक 'दबाव' एक पेचीदा व कमोबेश अनजाना शब्द रहता है।" बदनसीबी से हमारे यहां के बच्चों को स्कूलों में ये प्रयोग करना तो दूर, देखने तक का मौका नहीं मिलता। इसके विपरीत उन्हें बचपन से ही ऐसे शब्द और जुमले बोलने पर विवश किया जाता है जिन्हें वे समझते नहीं। इस प्रकार से उन्हें अपने ही कथनों का अर्थ न समझने की 'शिक्षा' दी जाती है।

वायुमण्डल का दबाव एक ऐसी अवधारणा है जो बच्चों व वयस्कों दोनों को समान रूप से भ्रमित करती है। इंग्लैण्ड में 15 वर्षीय बच्चों के साथ किए गए एक अध्ययन से उजागर हुआ कि उन्हें भी इस अवधारणा से जुड़े सवालों के जवाब देने में दिक्कत आती है। जिन सवालों का संबंध इस बात से था कि किसी बर्तन में अंदर हवा का दबाव बाहर से ज़्यादा था, तो उनके जवाब में मात्र 20 प्रतिशत छात्रों ने ही वायुमंडल के दबाव का ज़िक्र किया। 12, 14 व 16 वर्षीय छात्रों के साथ किए गए अन्य अध्ययनों का भी निष्कर्ष है कि 'स्ट्रॉ से पानी पीने' के सवाल पर छात्र 'निर्वात पानी को खींच लेता है' जैसे जुमलों का ही उपयोग करते हैं, जबकि प्रश्न में यह साफ लिखा था कि उन्हें वायुमण्डलीय दबाव की अवधारणा का उपयोग करके जवाब देना है।

दरअसल हमने यह भी देखा है कि शिक्षकों को भी वायुमण्डलीय दबाव, निर्वात आदि अवधारणाएं समझने में दिक्कत होती है। कई मर्तबा वे इन शब्दों को समझे बगैर ही इनका इस्तेमाल करते हैं। शिक्षक खुद भी इसी प्रणाली की उपज हैं और स्वाभाविक रूप से उन्हें भी यह समझने का मौका कभी नहीं मिला कि 'समझ' क्या होती है। और पहले कभी उन पर यह दबाव भी नहीं डाला गया कि इन बातों पर विचार करें। वे खुद भी प्रायः 'निर्वात की चूषण क्षमता' या 'अन्दर कम हवा पानी को खींचती है' जैसे आधारों पर ही सोचते हैं।

मुझे याद है कि जब मैं जामिया मिलिया इस्लामिया में भावी शिक्षकों को पढ़ाया करती थी तो हम 'मौखिक

विवरण' के लम्बे-लम्बे सत्र चलाते थे। इसमें पानी का पम्प कैसे काम करता है एक पसंदीदा विषय होता था। हर प्रशिक्षु जोश में आकर इस प्रश्न की कोई सरल मगर अपर्याप्त व्याख्या पेश करता था। अलबत्ता अक्सर वे यह समझ जाते थे कि वे तार्किक श्रृंखला की कोई महत्वपूर्ण कड़ी चूक गए हैं। और अक्सर इस कड़ी का संबंध दबाव में अंतर से होता था।

जब इस बात के इतने सबूत हैं कि ये अवधारणाएं और जुमले वयस्कों के लिए भी समस्यामूलक हैं, तब क्यों हम प्राइमरी स्कूल के बच्चों के दिमाग में दबा-दबाकर इन्हें ठूंसे चले जा रहे हैं? क्या हमें इस बात की कोई परवाह नहीं कि इससे उनका कितना नुकसान हो सकता है? क्या हमें कोई चिन्ता नहीं कि इससे वे समझने की क्षमता खोते जा रहे हैं, और स्कूल तक छोड़ रहे हैं?

हम समझे देरी से

'समझ में न आने' की बात को हमारे देश में पिछले चंद वर्षों में ही महत्व दिया जाने लगा है। कई सर्वेक्षणों व अध्ययनों से पता चला है कि बच्चों के स्कूल न आने या छोड़कर चले जाने का एक कारण यह भी है। दरअसल हमारे नीतिकारों व प्रशासकों का ध्यान इस बात पर हाल ही में गया है कि स्कूलों में कम दर्ज संख्या के पीछे, पेचीदा 'सामाजिक आर्थिक' कारकों व स्कूलों की अनुपलब्धता के अलावा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया भी एक महत्वपूर्ण कारक है। 'राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण' तथा ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) के लिए किए गए 'वर्तमान हालात सर्वेक्षण' से उजागर हुआ है कि स्कूल से बाहर के बच्चों का एक बड़ा तबका 'पढ़ाई को बहुत मुश्किल' पाता है और जो बच्चे स्कूल में हैं वे भी बुनियादी साक्षरता व गणित में निहायत पिछड़े हुए हैं।

इस संदर्भ में 'स्कूल का बोझ' कम करने हेतु सुझाव देने के लिए गठित की गई राष्ट्रीय सलाहकार समिति की रिपोर्ट 'बोझ रहित शिक्षा' की प्रस्तावना में प्रोफेसर यशपाल ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर बहुत ही संवेदनशील टिप्पणी की है:

"बच्चों पर बोझ के संदर्भ में गुरुत्वीय वज़न (भौतिक वज़न) की चर्चा तो संचार माध्यमों व संसद में भी खूब हुई है। इस अध्ययन के बाद मैं और मेरे अधिकतर साथियों को यकीन हो गया है कि ज़्यादा घातक बोझ अग्राह्य, संक्षिप्त व जटिल सामग्री का है। दरअसल हमें यह भी बताया गया है कि स्कूल छोड़ जाने वाले बच्चों में से काफी सारे बच्चे वे होते हैं जो इस से समझौता करने से इन्कार कर देते हैं – वे संभवतः उन बच्चों से श्रेष्ठतर हैं जो बगैर समझे याद करके परीक्षाओं में अच्छा प्रदर्शन कर देते हैं।"

(यह लेख तीन मूर्ति भवन की नेहरू मेमोरियल फैलोशिप के दौरान की गई शोध पर आधारित है। अनुवाद – सुशील जोशी।)

कॉर्क – सूखी, गड्ढों भरी छाल

● ओ. पी. जोशी, जयश्री सिक्का

हवा से भरी कोशिकाएं, वज़न पानी से भी हल्का और किसी भी तरल पदार्थ को आरपार न निकलने देना। ये कुछ ऐसे गुण हैं जिन्होंने एक पेड़ की छाल को इतना उपयोगी बना दिया है कि बोतल के ढक्कन से लेकर आणविक संयत्रों तक में इसका उपयोग हो रहा है। जीवशास्त्री इस पेड़ को 'कुरकुस रबर' कहते हैं। सूखी, गड्ढों से भरी इसकी खाल जिसकी कि हम बात कर रहे हैं उसको ही हम 'कॉर्क' कहते हैं। अब ज़रा सोचिए इस नाम के बारे में, क्या-क्या याद आता है। 'बोतल का कॉर्क', 'शटलकॉक की कॉर्क', और वो 'क्रिकेट की कॉर्क बॉल'.... ऐसे ही नाम ढूंढते रहेंगे तो लिस्ट लंबी, और लंबी होती जाएगी।

●

पुर्तगाल, स्पेन, पश्चिमी फ्रांस के कुछ हिस्सों, इटली व उत्तरी अफ्रीका में यह पेड़ खूब पाया जाता है। कॉर्क के पेड़ रेतीली ज़मीन पर आसानी से पनपते हैं। इन पेड़ों की शाखाओं को ज़मीन में लगाकर नए पेड़ उगाए जा सकते हैं।

सूखी गर्मी, आर्द्रतायुक्त ठंड और समुद्र तट तीनों ही तरह का मौसम चाहिए इसको पनपने के लिए।

वैसे तो कॉर्क का पेड़ अपनी 150 से 300 साल लम्बी ज़िंदगी में बाहरी छाल (यानी कॉर्क) को सांप की केंचुली की तरह लगातार निकालता रहता है और उसकी जगह फिर नई छाल आ आती है। लेकिन इस सबमें कई साल लग जाते हैं और बाज़ार में कॉर्क की भारी मांग को देखते हुए ज़रूरी हो जाता है कि हम समय से पहले ही कॉर्क के पेड़ से छाल निकालते रहें।

20 वर्ष की उम्र के आसपास पेड़ से पहली बार छाल यानी कॉर्क छीला जाता है। इसके बाद आमतौर पर हर नौ-दस साल में एक बार कॉर्क छीला जाता है। पूरी उम्र के लिहाज़ से करीब 150 साल तक कॉर्क, पेड़ से छीला जा सकता है।

इस पेड़ के तने में ऐसे ऊतक होते हैं, जिनसे लगातार नई कोशिकाएं पूरी सतह पर समान रूप से बनती हैं। कॉर्क तो पेड़ की छाल है, और छाल का काम है मौसम से तने को बचाना। तो होता यह है कि कॉर्क छीलकर निकालने के बाद भीतर बन रही नई कोशिकाएं इस खाली जगह का स्थान ले लेती हैं और धीरे-धीरे मोटी चमड़े-सी सतह फिर बन जाती है। इस तरह हमें कॉर्क लगातार मिलता रहता है।

कॉर्क की खासियत उसकी हवा से भरी कोशिकाएं हैं। कॉर्क में 35 प्रतिशत वसा होती है और इसलिए इसमें से पानी या अन्य कोई तरल आरपार नहीं जा सकता। हर कोशिका अत्यंत लचीली होती है। ऐसी कोशिकाओं की परत सूखी व गर्म हवा से पेड़ का अच्छा बचाव करती है।

आमतौर पर कॉर्क निकालने का काम गर्मियों में किया जाता है क्योंकि इस समय अधिक वाष्पीकरण से तना कुछ सूख जाता है और छाल निकालना आसान हो जाता है। वक्त के साथ-साथ अन्य जगहों पर तो कई कामों के लिए नई-नई तकनीक आ रही हैं लेकिन कॉर्क निकालने के तौर-तरीके अब भी वही हैं। अभी भी यह काम हाथों से ही किया जाता है। किसी तेज़ चाकू या फिर खासतौर पर बनाई गए कुल्हाड़ी या गोलाकार आरी से उस गहराई तक कटान बना देते हैं, जहां तक कॉर्क है। काट खड़े में लगाई जाती है और चारों तरफ आड़े में एक गोल घेरे में भी। उसके बाद डंडे व छैनी आदि की मदद से बाहरी छाल को भीतर के ऊतकों से धीरे से अलग कर देते हैं। इस बात का खास ध्यान रखा जाता है कि अंदर की

नई कोशिकाएं बनाने वाली कैम्बियम की परत को किसी भी तरह से चोट न पहुंचे। हमें आगे भी कॉर्क जो चाहिए!

कॉर्क की छाल निकालकर फिर इसे खरीदने वालों के निरीक्षण के लिए रखा जाता है। यहां से आधे बेलन की शक्ल जैसे टुकड़ों में कॉर्क की परतों को कारखानों में ले जाया जाता है। जहां इन्हें लगभग एक घन्टे तक उबाला जाता है या भाप में रखा जाता है। इससे कॉर्क फूल जाता है और इसमें उपस्थित खनिज और अम्ल वगैरह निकल जाते हैं। और फिर सतह के खुरदुरेपन को हाथ से घिसकर निकाल दिया जाता है। ठंडा होकर यह मुलायम और लचीला हो जाता है।

कॉर्क की गुणवत्ता आमतौर पर इस बात से निर्धारित होती है कि उसमें उपस्थित छिद्र कितने हैं। कॉर्क का इस्तेमाल करते समय यह ध्यान रखते हैं कि उपयोग के लिए आकार काटते समय, उसे छिद्रों की लम्बवत दिशा में काटा जाता है। बोतलों के डॉट हमेशा लम्बी ओर से यानी सिरे पर से काटे जाते हैं।

●

आमतौर पर बोतल में कॉर्क की डॉट फंस जाने पर सबने गरम पानी या ठंडा पानी डालने जैसी जुगत भिड़ाने की कोशिश ज़रूर की होगी, लेकिन कॉर्क के हल्केपन के राज़ के बारे में शायद ही सोचा होगा। कॉर्क के हल्के होने का प्रमुख कारण कॉर्क की हवा से भरी कोशिकाएं हैं। कॉर्क की हवा से भरी इन कोशिकाओं की दीवारें बहुत पतली होती हैं और इसी कारण कॉर्क बहुत ही हल्के पदार्थों में से एक है, पानी के 1/5 वें भाग के बराबर। कॉर्क एक अच्छा कुचालक भी है, उष्मा और बिजली दोनों आसानी से इसके आरपार नहीं जा सकते।
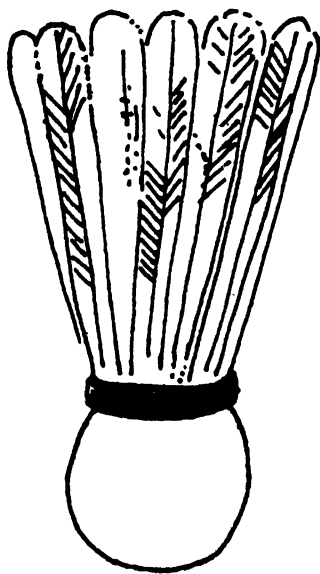
कॉर्क की बहुत-सी विशेषताओं — लचीलापन, कुचालकता, बहुत कम घनत्व आदि के कारण दुनिया ने इसके लिए बहुत से उपयोग ढूंढ लिए हैं।

इसकी कोशिकाओं पर बहुत से रसायनों जैसे कार्बनिक घोलक पदार्थों, कमज़ोर अम्लों या क्षारों का लगभग नगण्य असर होता है। कॉर्क ज्वलनशील नहीं है, और यह लम्बे समय तक अपनी विशेषताओं को बरकरार रखता है। यह गंधहीन और स्वादहीन भी है। ये सब गुण न सिर्फ बोतलों को बंद करने के डॉट बनाने के लिए बल्कि विद्युत उपकरणों में कुचा-लक परत, फर्श के लिए बिछौना और फर्श-दीवार के टाईल बनाने के लिए भी उपयोगी हैं।

हालांकि कॉर्क का सबसे जाना पहचाना उपयोग बोतल की डॉट है लेकिन कई अन्य काम के लिए भी इसका इस्तेमाल होता है। हवा से भरे खूब सारे छिद्रों के कारण यह आवाज़ का बेहद उम्दा कुचालक है और

ध्वनि को बहुत बढ़िया तरीके से सोखता है, उसे गूंजने नहीं देता। इसलिए सिनेमाघरों और नाट्यगृहों में भी इसका इस्तेमाल किया जाता है।

कॉर्क से बोर्ड भी बनाए जाते हैं। इसके लिए कॉर्क का चूरा करके उसे ऊंचे ताप पर दबाया जाता है या फिर उसमें चिपकाने वाला पदार्थ डाल देते हैं और फर्शों व दीवारों की टाईलों, लिनोलियम, बर्फ जमने वाली जगहों आदि में इसका उपयोग करते हैं। साथ ही गर्म होने वाले या भाप बनाने वाले कुछ बर्तनों और यंत्रों में भी इसे गास्केट के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं।

कॉर्क के कुछ अन्य उपयोग भी हैं जैसे – आणविक पनडुब्बियों के एयरकंडिशनर, सक्रिय रेडियो आइसोटोप्स को संग्रहित करने आदि में। कॉर्क के आवरण में रखे आइसोटोप्स 10 मीटर ऊंचाई से गिरने पर या 800 अंश सेल्सियस तापमान होने पर भी बाहर नहीं जा सकते। रॉकेट व सेटेलाईट में भी कॉर्क का उपयोग लगातार बढ़ रहा है।

अब आप सोचिए आपने और कहां-कहां कॉर्क का उपयोग होता देखा है?

ओ. पी. जोशी और जयश्री सिक्का गुजराती कॉलेज इंदौर में वनस्पति विज्ञान पढ़ाते हैं।

चित्रांकन: लक्ष्मी मूर्ति, उदयपुर
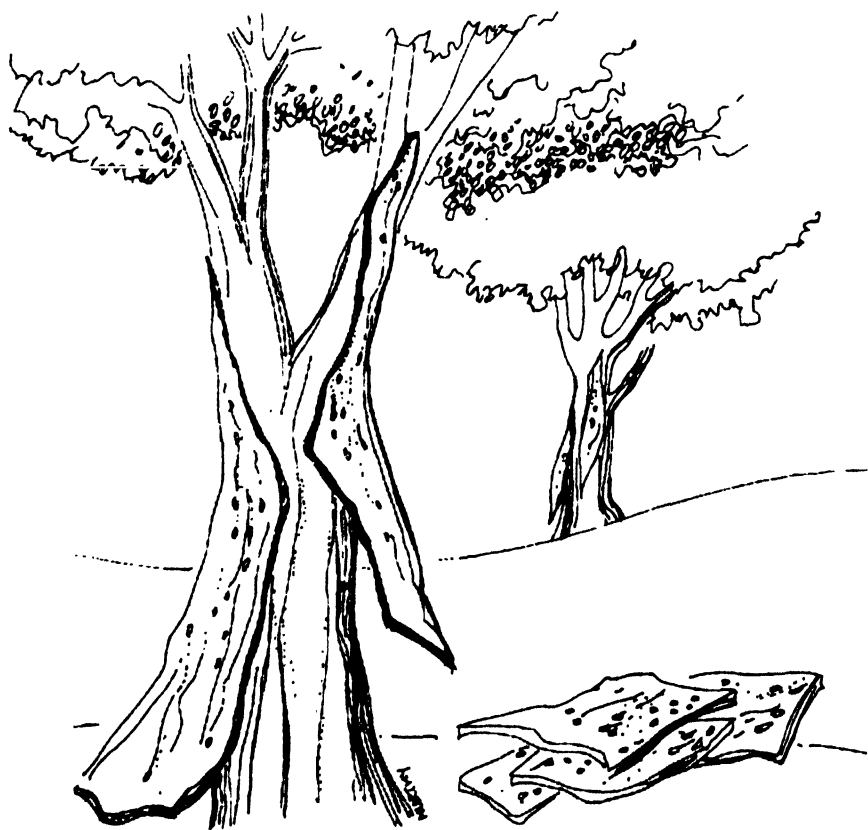
तापमान कैसे नापें
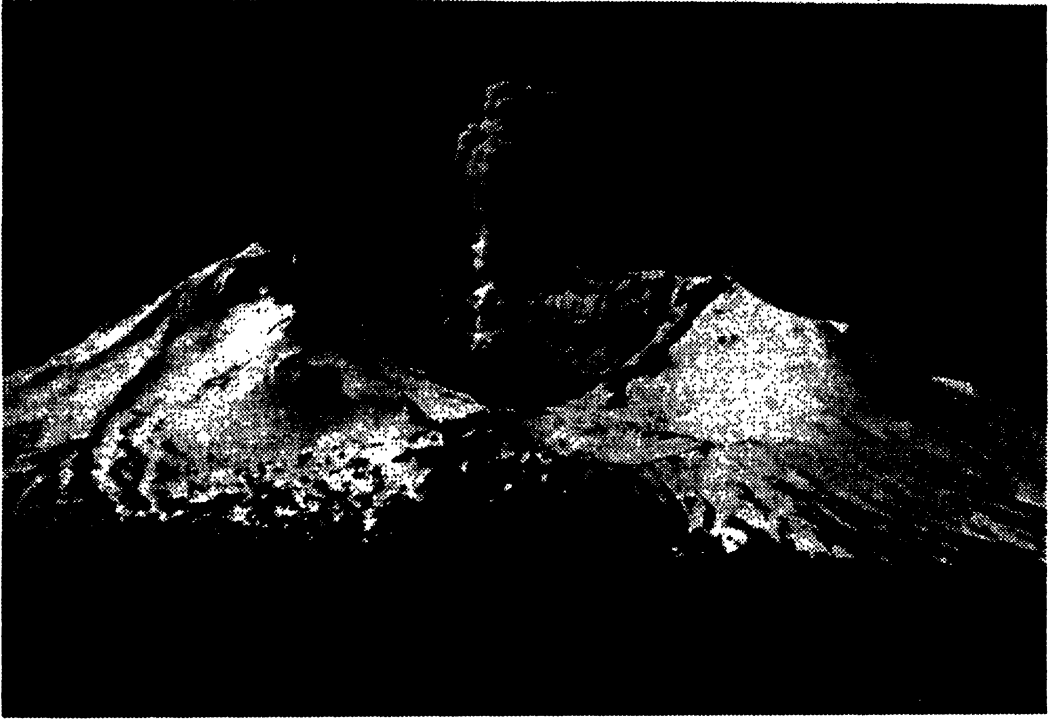
● अजय शर्मा

सिर्फ छूकर, महसूस कर या देख कर ही ताप नहीं नापा जा सकता। अलग-अलग ज़रूरतों के हिसाब से ताप नापने के अलग-अलग तरह के तापमापी बने हैं, विभिन्न आधार लेकर।

विज्ञान के इतिहास के पन्ने पलटने पर एक काफी रोचक तथ्य उभरकर आता है। वो यह कि – उष्मा और तापमान की अवधारणाओं की हमारे जीवन में इतनी अहमियत होने के बावजूद, करीब अठाहरवीं सदी तक लोगों के पास कोई ऐसा सही और सटीक तरीका नहीं था जिससे वो पता लगा सकें कि कोई वस्तु कितनी गर्म या ठंडी है। एक रसोइया अपने चूल्हे की गर्मी अंगारों के रंग को देखकर आंकता था; और एक वैद्य या हकीम अपने मरीज़ के बुखार का अंदाज़ा लगाता था, उसके माथे को छूकर। हम किसी वस्तु के

एक से ठंड तो एक से गर्मी

सर्दियों में लोहे की कुर्सी, लकड़ी की कुर्सी से ज़्यादा ठंडी प्रतीत होती है, जबकि दोनों का तापमान एक ही होता है। सन् 1690 में, दार्शनिक जॉन लॉक द्वारा सुझाया गया यह प्रयोग, हमारी छूकर तापमान आंकने की क्षमता की सीमितता को बहुत ही रोचक ढंग से उजागर करता है:

आप अपना एक हाथ बर्फीले पानी में, और दूसरा गर्म पानी में डालकर एकाध मिनिट के लिए छोड़ दें। उसके बाद, दोनों हाथों को गुनगुने पानी में डालें। और फिर बताइए कि पानी गर्म है या ठंडा? एक हाथ (जो बर्फीले पानी में था) से आपको पानी गर्म लगेगा, और दूसरे से ठंडा। बोलिए, किस हाथ पर आप भरोसा करेंगे!

तापमान का अंदाज़ा उसे छूकर लगा तो सकते हैं पर ज़ाहिर है कि हमारी तापमान के प्रति संवेदनशीलता काफी सीमित और ज़्यादा भरोसेमंद नहीं है।

कम से कम आजकल के व्यावहारिक और वैज्ञानिक कार्यों के लिए तो ज़रा भी नहीं। (जैसे उबलते पानी को छूकर उसका तापमान कौन मालूम करना चाहेगा!)

इसलिए समय के साथ-साथ ज़रूरत महसूस हुई कुछ ऐसे तरीकों और उपकरणों की, जिनसे कौन वस्तु कितनी गर्म या ठंडी है, इसका सही, सटीक और वस्तुपरक मापन हो सके।

अब स्वाभाविक है कि अगर हमें किसी चीज़ का तापमान नापना है तो इसके लिए इन तीन चीज़ों का होना बेहद ज़रूरी हो जाता है:

1. पदार्थों के किसी ऐसे गुण का, जो तापमान पर निर्भर हो और उसके साथ घटता-बढ़ता हो – समान और सुस्पष्ट रूप से;

2. ऐसे सामान्य रूप से उपलब्ध सस्ते पदार्थ का, जो इस गुण के, तापमान के साथ उतार-चढ़ाव को बखूबी दर्शाता हो; और
3. एक सर्वमान्य एवं प्रचलित मापदंड का जो इस गुण के एक निश्चित बदलाव को तापमान की एक निश्चित घट-बढ़ के साथ जोड़ता है।

खुशकिस्मती से पदार्थों के कई ऐसे भौतिक गुण हैं जो तापमान पर निर्भर करते हैं, और उसको नापने के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं। मसलन, उनका आकार, उनके विद्युतीय, चुंबकीय, प्रकाशकीय गुण, आदि।

आमतौर पर आकार में परिवर्तन से तापमान को नापना हमारे लिए सबसे ज़्यादा सरल तरीका साबित होता है। डॉक्टरों वाला थर्मामीटर, जिससे किसी मरीज़ का तापमान नापा जाता है, इसी सिद्धांत पर आधारित है। इसमें कांच का एक खोखला बल्ब बना होता है, जो एक छोटे से छिद्र द्वारा एक कांच की नली से जुड़ा हुआ होता है। बल्ब में पारा भरा जाता है। मुंह में थर्मामीटर डालने से बल्ब में मौजूद पारे को शरीर की उष्मा प्राप्त होती है, और उसका तापमान बढ़ने लगता है। पारे का तापमान बढ़ने से, पारे के आयतन में भी बढ़ोतरी होती है, और वह कांच की नली में फैल जाता है। नली में पारे की ऊंचाई तब तक बढ़ती रहती है जब तक उसका तापमान हमारे शरीर के तापमान के बराबर नहीं हो जाता। पारे की ऊंचाई हमारे शरीर के तापमान को दर्शाती है, जिसे नली पर खुदे एक पैमाने के माध्यम से पढ़ा जा सकता है।

जैसा कि हमने पहले ज़िक्र किया था आकार में परिवर्तन के अलावा पदार्थों के और भी कई भौतिक गुण होते हैं जिन पर आधारित तापमापी उपकरण बनाए जा सकते हैं। इस लेख के अंत में ऐसे ही कुछ उपकरणों का वर्णन करेंगे जो आमतौर पर हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में तो इस्तेमाल नहीं होते लेकिन तापमापी कारखानों, प्रयागशालाओं वगैरह में बेहद कारगर साबित होते हैं।

अब वक्त आ गया है कि हम चर्चा करें उस ज़रूरी चीज़ की जिसके बिना किसी भी भौतिक मात्रा का मापन असंभव है। जी हां, हमारा इशारा उन सर्वमान्य मापदंड या पैमानों की ओर है जिनका पूर्वनिर्धारण करना किसी भी भौतिक मात्रा के मापन के लिए अनिवार्य हो जाता है।

तापमान के पैमाने

थर्मामीटर का पैमाना तय करने के लिए, संख्या 0 (शून्य) उस तापमान के लिए निर्धारित कर दी जाती है जिससे मानक वायुमंडलीय दबाव पर (समुद्र तल पर जितना होता है) पानी बर्फ के रूप में जम जाता है, और संख्या 100 उस तापमान के लिए जिस पर मानक वायुमंडलीय दबाव पर, पानी पूर्ण रूप से उबलने लगता है।

इन दो स्थायी बिन्दुओं के बीच के अंतराल को 100 बराबर भागों में बांट

दिया जाता है। एक भाग को एक डिग्री के बराबर माना गया है। तापमान को डिग्री सेल्सियस (^{0}से.) की इकाइयों में पढ़ा जाता है। यानी इस पैमाने पर 'वाष्प बिन्दु' का तापमान हुआ 100 डिग्री से., और 'बर्फ बिन्दु' का 0 डिग्री से.। इस पैमाने का सबसे पहले सुझाव दिया था स्वीडन के एक खगोलशास्त्री ए. सी. सेल्सियस ने, सन् 1742 में। उन्हीं के सम्मान में इस पैमाने को सेल्सियस पैमाने के नाम से जाना जाता है।

जिन देशों में अंग्रेज़ी बोली-लिखी जाती है (खासतौर से संयुक्त राज्य अमेरीका में), वहां आम ज़रूरतों के लिए सेल्सियस पैमाने के अलावा एक पैमाना और प्रचलित है – फेरेनहाइट पैमाना। इस पैमाने को सबसे पहले सोचने और उस पर आधारित थर्मामीटर बनाने का श्रेय जाता है जर्मन वैज्ञानिक जी. डी. फेरेनहाइट (1686-1736) को।

ज़ाहिर है कि इस पैमाने की इकाई डिग्री फेरेनहाइट (^{0} फे.) होती है। फेरेनहाइट पैमाने पर बर्फ बिन्दु को 32 डिग्री फे. और वाष्प बिन्दु को 212 डिग्री फे. के तापमान पर मान लिया जाता है; और इन दोनों स्थायी बिन्दुओं के बीच के अंतराल को हम 180 बराबर डिग्रियों में विभाजित कर देते हैं। अक्सर, हम लोग अपने शरीर का तापमान इसी पैमाने पर नापते हैं।

आपने शायद गौर किया हो कि वाष्प बिन्दु और बर्फ बिन्दु के बीच के अंतराल को सेल्सियस पैमाने पर तो हमने 100 डिग्रियों में बांटा, पर फेरेनहाइट पैमाने के इतने ही अंतराल में समायी 180 डिग्रियां। यानी सेल्सियस पैमाने की एक डिग्री, फेरेनहाइट पैमाने की एक डिग्री से थोड़ी बड़ी होती है

32 और 212 ही क्यों?

आपको शायद ताज्जुब हो रहा हो कि भला फेरेनहाइट को क्या सूझी जो उसने बर्फ और वाष्प बिन्दु के लिए 32 और 212 जैसी संख्याएं चुनी? आखिर इन संख्याओं में ऐसी क्या खास बात है। दरअसल ये संख्याएं उसने नहीं चुनी थी। उसने अपना पैमाना बनाने के लिए बर्फ और वाष्प बिन्दुओं की जगह कुछ और ही स्थायी बिन्दुओं का चयन किया था।

उसने अपनी प्रयोगशाला में बर्फ और नौसादर का मिश्रण बनाया और उसे अपने पैमाने के निचले शून्य बिंदु के रूप में लिया। ऊपरी स्थाई बिन्दु के रूप में उसने चुना, मनुष्य के शरीर का सामान्य तापमान, जिसे उसने 96 माना। जबकि आज हम जानते हैं कि यह 98.6^0 फे. होता है। बाद के दौर में पैमाने के लिए स्थाई बिन्दुओं के रूप में 'बर्फ बिन्दु' और 'वाष्प बिन्दु' को लिया जाना अधिक प्रचलित हो गया। फेरेनहाइट पैमाने पर बर्फ बिन्दु और वाष्प बिन्दु 32^0 फे. और 212^0 फेरेनहाइट पर मिलते हैं।
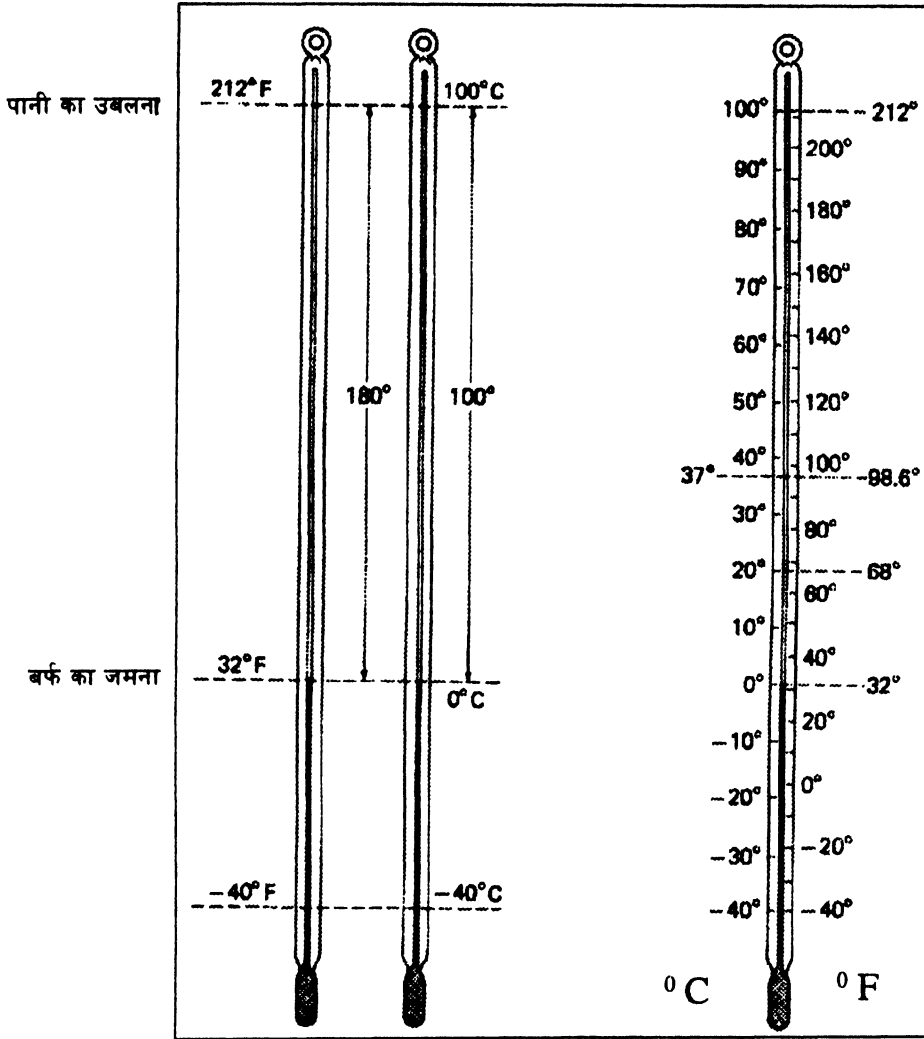
सेल्सियस पैमाना और फेरेनहाइट पैमाना; उनके बीच तुलना

1 सेल्सियस डिग्री = 1.8 फेरेनहाइट डिग्री चित्र में इन दोनों पैमानों की एक तुलनात्मक तस्वीर पेश की गयी है।

परम शून्य

तापमान नापने की जब हम बात करते हैं तो एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि आखिर, तापमान की सीमाएं क्या हैं? यानी इस संसार में, या कहिए कि पूरे ब्रह्मांड में, अधिक-से-अधिक और कम-से-कम तापमान क्या हो सकते हैं?

अब जहां तक अधिकतम तापमान का सवाल है – सिद्धांततः ऐसी कोई ऊपरी सीमा नहीं है। यानी विज्ञान में ऐसी कोई अवधारणा नहीं है जो यह कहे कि किसी भी वस्तु का तापमान फलां-फलां संख्या से ज़्यादा नहीं हो सकता। आप बस किसी चीज़ को उष्मा

देते रहिए, और उसका तापमान बढ़ता रहेगा – बेरोकटोक और बिना किसी हद के। किसी ठोस वस्तु को ही ले लीजिए। अगर उसको गर्म करते रहें, तो पहले तो वह पिघलेगी, और फिर कुछ समय बाद वाष्प में परिवर्तित हो जाएगी। अब जैसे-जैसे तापमान और बढ़ाया जाता है, वाष्प के अणु टूटकर परमाणुओं में बिखर जाते हैं। धीरे-धीरे परमाणु भी खंडित हो जाते हैं, इलेक्ट्रॉनों और आयनों (धन आवेशित परमाणु) में। आपके पास बस रह जाता है इन आवेशित कणों का एक बादल, जिसे प्लाज़्मा के नाम से जाना जाता है। पदार्थ की इस अवस्था का तापमान लगभग 20,000 डिग्री सेल्सियस के करीब होता है।

न्यूनतम तापमान के संदर्भ में वैज्ञानिकों का मत कुछ और ही है। उनका मानना है कि – भले ही अधिकतम तापमान की कोई सीमा न हो, पर तापमान की एक न्यूनतम सीमा ज़रूर होती है। यह वह न्यूनतम तापमान है जिससे कम किसी भी वस्तु का तापमान हो ही नहीं सकता। इस तापमान की ओर सबसे पहले इशारा किया गैस के कुछ प्रयोगों ने जो यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के आखिरी दशकों में किए गए।

सभी गैसें गर्म करने पर फैलती हैं, और ठंडी होने पर सिकुड़ती हैं। अगर कोई गैस शून्य डिग्री तापमान पर है और उसका दबाव निश्चित है, तो उसका तापमान भी निश्चित होता है। इन प्रयोगों में पाया गया कि ऐसी स्थिति में अगर किसी गैस के तापमान में एक डिग्री सेल्सियस का परिवर्तन किया जाए तो उसका आयतन एक विशेष मात्रा से बदलता है। अगर किसी गैस का आयतन 0 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 'क' है, तो तापमान में 1 डिग्री का परिवर्तन करने पर आयतन भी क/273 से बदल जाता है, बशर्ते इस दौरान गैस का दबाव स्थिर रखा गया हो। अब अगर हम यह मान कर चलें कि सभी गैस शून्य अंश सेल्सियस से नीचे भी यही गुण प्रदर्शित करती हैं तो निष्कर्ष यह निकलता है कि अगर गैस को शून्य से 273 अंश सेल्सियस नीचे तक ठंडा कर दिया जाए, तो उसका आयतन (273 x क/273) से सिकुड़ जाएगा। यानी किसी भी गैस का आयतन –273 अंश सेल्सियस पर शून्य हो जाना चाहिए।

इन प्रयोगों ने यह भी दर्शाया कि शून्य डिग्री सेल्सियस पर रखी गई एक निश्चित और स्थिर आयतन की गैस का दबाव भी तापमान में 1 अंश सेल्सियस का बदलाव लाने पर 1/273 से बदल जाता है। अर्थात, –273 अंश सेल्सियस पर गैस का दबाव भी शून्य हो जाना चाहिए।

अब ज़ाहिर है किसी भी गैस का न तो कभी दबाव शून्य हो सकता है, और न ही उसका आयतन। दरअसल, कोई भी गैस इतनी ठंडी होने से पहले ही द्रव बन जाती है। फिर भी, इस तरह के प्रयोग एक न्यूनतम तापमान –273 अंश सेल्सियस की ओर इशारा करते हैं। जी हां, 273 अंश सेल्सियस ही है ठंडेपन की आखिरी सरहद। इस तापमान को

परम शून्य
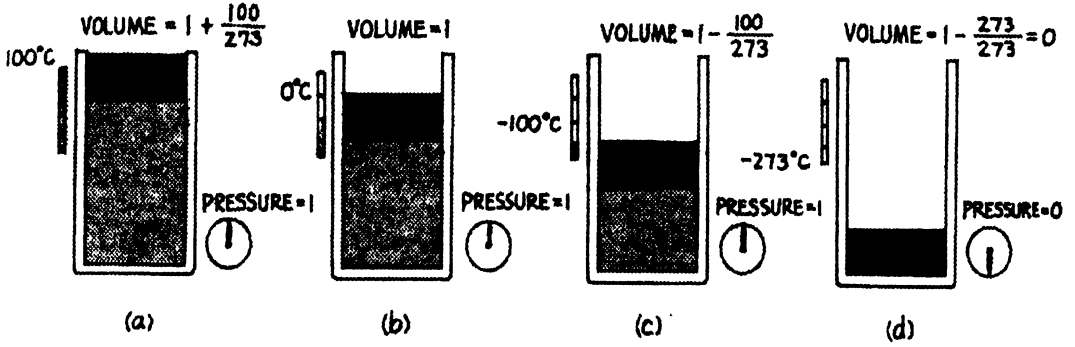
परम शून्य यानी क्या: गैसों पर किए गए कुछ प्रयोगों ने इस दिशा में इशारा किया कि गैसों के तापमान में एक डिग्री से. का परिवर्तन करने पर 0° से. पर गैस के आयतन के 1/273वें भाग के बराबर परिवर्तन हो जाता है। लेकिन शर्त है कि दाब नियत रहे। गैसों के इस व्यवहार के बारे में तो हम जानते ही हैं कि गर्म करने पर फैलती हैं और ठंडा करने पर सिकुड़ती हैं। तो इस हिसाब से 100^{0} से. पर गैस का आयतन 0^{0}से. पर आयतन के मुकाबले 100/273 भाग बढ़ जाएगा। इसी तरह -100^{0} से. पर आयतन 0^{0} से. पर आयनत के मुकाबले 100/273 भाग कम हो जाएगा और -273^{0} से. पर शून्य हो जाएगा। लेकिन व्यवहार में ऐसा होना संभव नहीं है, ये तो सिर्फ आदर्श स्थिति है जो परम शून्य की तरफ इशारा करती है।

परम शून्य भी कहते हैं। परम शून्य पर पदार्थ की आंतरिक ऊर्जा न्यूनतम होती है। इस तापमान पर, उसमें से हम न तो ज़रा-सी भी ऊर्जा निकाल सकते हैं, और न ही उसे और अधिक ठंडा कर सकते हैं।

आप शायद सोचें कि हम −273 अंश सेल्सियस को परम शून्य क्यों कह रहे हैं? दरअसल, बात यह है कि इस तापमान से एक खास पैमाना जुड़ा हुआ है – केल्विन तापमान पैमाना। खास इसलिए क्योंकि इस पैमाने पर परम शून्य तापमान को वाकई शून्य माना गया है। यानी, 273 अंश सेल्सियस =0 केल्विन। केल्विन इस पैमाने की इकाई है।

1 केल्विन = 1 अंश सेल्सियस।

किसी वस्तु के, इन दोनों पैमानों पर नापे गये तापमान, इस सूत्र द्वारा जुड़े हुए हैं:

तापमान (केल्विन) =
तापमान (सेल्सियस) +273

वैज्ञानिक शोधकार्य में मुख्यतः इसी पैमाने का उपयोग होता है।

चूंकि केल्विन पैमाने पर तापमान की न्यूनतम सीमा को ही 0 केल्विन परिभाषित किया गया है, इस पैमाने पर ऋण तापमान नहीं होते।

थर्मोमीटरी यानी तापमापन

पदार्थों के कई भौतिक गुण ऐसे हैं जो तापमान पर निर्भर करते हैं। तापमान के साथ-साथ इन गुणों में बदलाव की मदद से तापमान का मापन किया जा सकता है। मिसाल के तौर पर डॉक्टरों द्वारा उपयोग में लाया जाने वाला थर्मोमीटर पारे के आकार (साईज़) की तापमान पर निर्भरता के आधार पर तापमान मापन करता है।

तापमान मापन के लिए इस्तेमाल किए जाने वाला हरेक भौतिक गुण तापमान की एक खास रेंज के मापन के लिए ही उपयुक्त होता है। किसी गुण के आधार पर सिर्फ ऊंचे तापमान नापने वाले थर्मोमीटर बनाए जा सकते हैं तो कोई गुण सिर्फ कम तापमान के मापन के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। तालिका में, प्रयोग में लाए जाने वाले कुछ तापमापी और तापमान की वह तकरीबन रेंज जिसमें वह मापन के लिए उपयुक्त साबित होते हैं, दी गयी है।

क्र. तापमान की रेंज	(^{0} से.)
1. एल्कोहल थर्मोमीटर	−80 से 100
2. मरक्युरी थर्मोमीटर	−35 से 350
3. द्विधातु थर्मोमीटर	40 से 500
4. विद्युत प्रतिरोध थर्मोमीटर	−270 से 1600
5. थर्मोकपल थर्मोमीटर	−260 से 1600
6. ऑप्टीकल पायरोमीटर	600 से ऊपर
7. इन्फ्रारेड पायरोमीटर	−20 से 1700

इस खंड में हम कुछ ऐसे तापमापी उपकरणों का वर्णन करेंगे जिनसे आम जीवन में हमारा वास्ता शायद ही पड़ता हो।
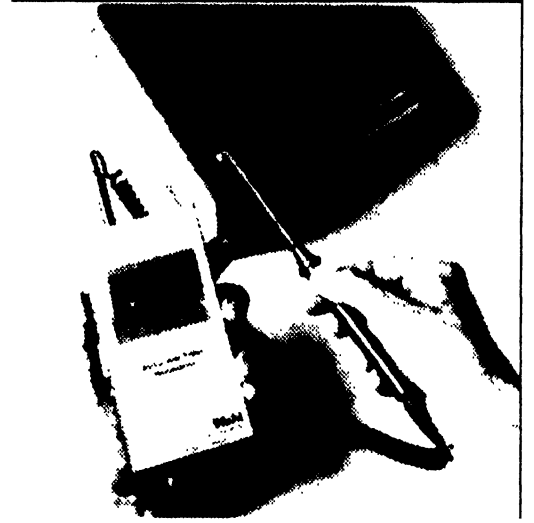
विद्युत प्रतिरोध थर्मोमीटर

विद्युत प्रतिरोध थर्मोमीटर

ज़्यादातर धातुओं का विद्युत प्रतिरोध तापमान के साथ बढ़ता है – वह भी इतना अधिक कि फर्क आसानी से दिखाई दे मसलन प्लेटिनम के तापमान को 0^0 से. से 100^0 से. तक ले जाने पर उसके विद्युत प्रतिरोध में 39 प्रतिशत का इज़ाफा हो जाता है। इसलिए इस तरह की धातुओं का विद्युत प्रतिरोध उनके तापमान का विश्वसनीय सूचक माना जा सकता है। विद्युत प्रतिरोध थर्मोमीटर इस गुणधर्म पर आधारित होते हैं। इस तरह तापमान नापने के लिए प्लेटिनम धातु खासी उपयुक्त मानी जाती है क्योंकि इस धातु के विद्युत प्रतिरोध में परिवर्तन की मदद से -200^0 सेल्सियस से लेकर 1100^0 सेल्सियस तक के तापमान बखूबी नापे जा सकते हैं।
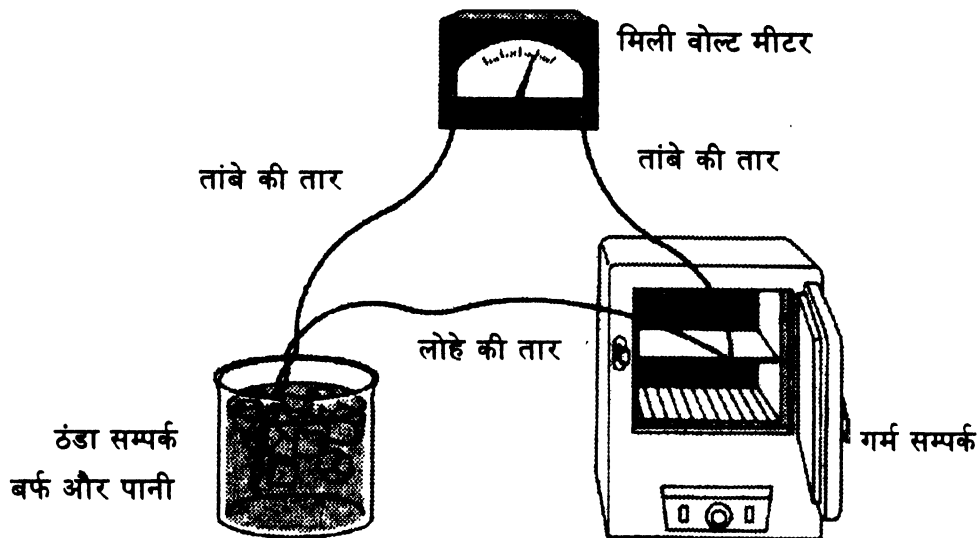
थर्मोकपल थर्मोमीटर: जब लोहे-तांबे के तार के सिरों को दो अलग-अलग तापमानों पर रखते हैं तो विद्युत धारा बहने लगती है। इस धारा का वोल्टेज तापमानों के अन्तर पर निर्भर करता है।

थर्मोकपल थर्मामीटर

यह थर्मोमीटर एक खास विद्युतीय प्रभाव पर आधारित होते हैं। अगर धातु के एक तार के दोनों सिरों को, एक दूसरी धातु के, एक दूसरे तार के दोनों सिरों से जोड़ दिया जाए तो तार का एक बंद परिपथ बन जायेगा। चूंकि यह परिपथ दो तारों को जोड़कर बनाया गया है, स्वाभाविक है इस परिपथ में दो जोड़ (जंक्शन) होंगे। इन दो जोड़ों, यानी जंक्शनों, को अगर अलग-अलग तापमान पर रखा जाए तो परिपथ में विद्युत प्रवाह होने लगता है।

यह पाया जाता है कि इन दो जोड़ों के बीच का वोल्टेज, जो कि विद्युत प्रवाह का कारण बनता है, इनके तापमान के अंतर पर निर्भर करता है। यानी इन जोड़ों के बीच जितना अधिक तापमान का फर्क होगा, वोल्टेज उतनी ही अधिक होगी। अब अगर हमें एक जंक्शन का तापमान मालूम है तो वोल्टेज मापकर दूसरे जंक्शन का तापमान नापा जा सकता है। थर्मोकपल थर्मोमीटर इसी सिद्धांत पर आधारित होते हैं ।

ऑप्टीकल पायरोमीटर

किसी भी वस्तु से निकलने वाला प्रकाश अपने रंग (अर्थात दृश्य प्रकाश की तरंग-लंबाई) के कारण उस वस्तु के तापमान की अच्छी-खासी जानकारी दे जाता है। मिसाल के तौर पर, धातुओं को जब बहुत अधिक गर्म कर दिया जाता है तो वे अलग-अलग रंग के प्रकाश से प्रज्वलित हो उठती हैं।

प्रकाश का रंग उनके तापमान पर निर्भर करता है। यह निर्भरता लगभग इस तरह की होती है:
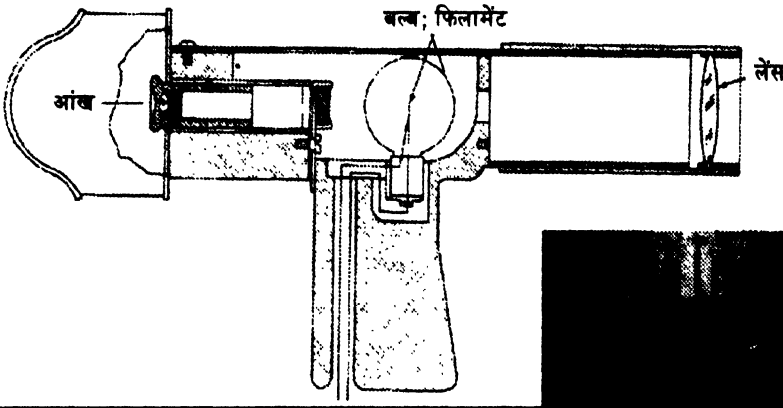
ऑप्टिकल पायरोमीटर: सिर्फ आंख भरोसे नहीं; यह तो मालूम है कि धातुएं अलग-अलग ताप पर अलग-अलग रंग का प्रकाश छोड़ती हैं। इस उपकरण में धातुओं द्वारा छोड़े जा रहे प्रकाश के रंग और चमक की तुलना के लिए फिलामेंट लगा होता है। फिलामेंट को गर्म करके उसके रंग और चमक से धातु के प्रकाश की तुलना की जाती है।

प्रकाश का रंग	तापमान (सेल्सियस)
मंद लाल –	475
मटमैला लाल –	600
सुर्ख लाल –	700
हल्का किंतु तेज़ लाल	850
नारंगी –	900
पीला –	1000
नीला-सफेद –	1150 से आगे तक

अर्थात अत्यंत गर्म वस्तुओं से निकलने वाले प्रकाश की मदद से उनका तापमान नापा जा सकता है। ऑप्टीकल पायरोमीटर इसी तथ्य पर आधारित है।

परन्तु केवल देखकर अंदाज़ा लगाने से बहुत भरोसेमंद परिणाम नहीं मिलेंगे। इसलिए ऑप्टिकल पायरोमीटर में तापमान मापने वाले स्रोत की तुलना एक बल्ब की फिलामेंट से की जाती है। फिलामेंट में करंट की मात्रा को कम-ज़्यादा करके उसकी रोशनी कम-ज़्यादा की जा सकती है। इस तरह जब फिलामेंट और तापमान मापने वाला स्रोत एक जैसे चमक रहे हों, करंट की मात्रा से तापमान पता लगाया जा सकता है।

इस उपकरण की मदद से पिघले लोहे जैसे अत्यंत गर्म पदार्थों का तापमान दूर से ही नापना संभव हो जाता है।

इंफ्रारेड पायरोमीटर

सभी गर्म वस्तुओं से इंफ्रारेड (अवरक्त) किरणें निकलती हैं। इन किरणों

ता

....

....

शैक्षिक संदर्भ

वार्षिक सदस्यता

एवं

उपहार

....

रुपए

लिए, डाकखर्च मुफ्त।

ां। चेक स्वीकार नहीं

हस्ताक्षर

सदस्यता शुल्क इस पते पर भेजें:

एकलव्य

कोठी बाज़ार

होशंगाबाद - 461 001

संदर्भ वार्षिक सदस्यता

नाम ....

पता ....

....

....

....

पिन ....

सदस्यता शुल्क .... वर्ष के लिए .... रुपए

(वार्षिक सदस्यता शुल्क 35/- रुपए, 6 अंकों के लिए, डाकखर्च मुफ्त। बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर एकलव्य के नाम से भेजें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे।)

हस्ताक्षर
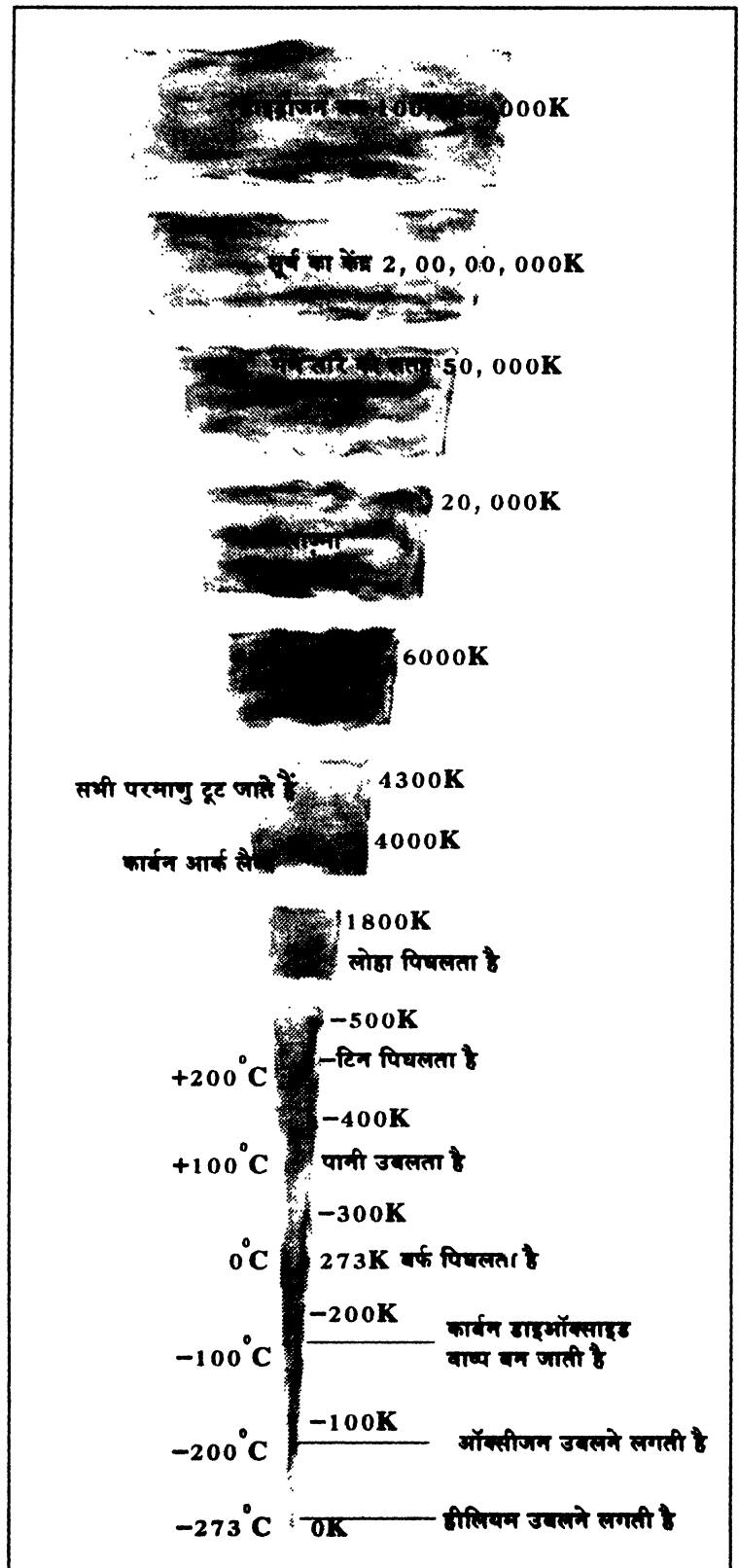
केल्विन और सेल्सियस स्केल ; कुछ तापमान

भूगोल, स्कूली किताबें और कुछ अनुभव
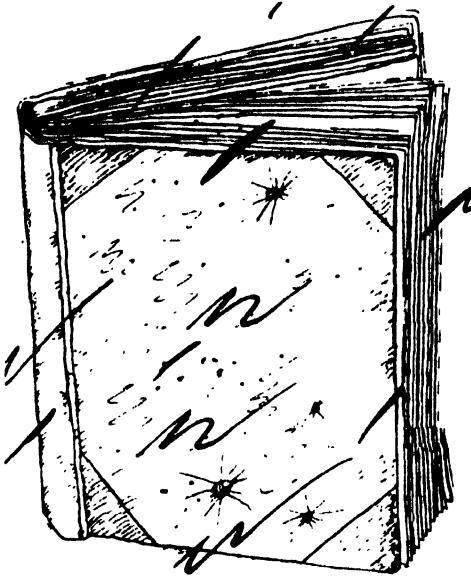
किसी भी शिक्षण व्यवस्था के लिए पर्याप्त साधन-सुविधाएं तथा सभी लोगों के लिए स्कूलों की सुलभता तो एक महत्वपूर्ण पहलू है ही। लेकिन क्या सीखने की ज़रूरतें इतने में पूरी हो जाती हैं? क्या यह सब होने पर निश्चित हो जाता है कि वहां अच्छी पढ़ाई होगी ही?

केरला, जहां व्यवस्था को लेकर काफी अनुकूल परिस्थितियां है, के उदाहरण के सहारे भूगोल की कुछ अवधारणाओं को समझाने के तरीके पर सवाल।

कभी-कभार अपने खुद के बचपन के स्कूली अनुभवों की याद ताज़ा करने से बच्चों की सीखने की प्रक्रियाओं को समझने में मदद मिल जाती है। ऐसी कौन-सी बातें थीं, जो सहजता से याद रह जाती थीं? ज़्यादा कुछ याद न भी आए पर यह तो अच्छी तरह से याद है कि वो सब जो थोड़ा-सा भी मुश्किल होता दिमाग में घुसता ही न था। रटकर याद करना सदा ही बहुत मुश्किल लगता था, इसलिए एक कक्षा पास करके दूसरी में पहुंचना कभी भी आसान नहीं रहा।

बाद में कॉलेज के ज़माने में खुद भूगोल पढ़ते हुए कई ऐसे शिक्षकों और विद्यार्थियों से समय-समय पर सामना हुआ जिनके मन में यह सवाल उठता रहता था कि भूगोल में पढ़ाई जाने वाली बहुत-सी बातें कैसे समझाई जाएं, कैसे समझी जाएं। शायद कई कारण होंगे जिसकी वजह से विद्यार्थियों को भूगोल की बहुत-सी अवधारणाएं मुश्किल लगती हैं। यह भी अक्सर सुनने में आता है कि अगर शिक्षक रोचकता से, उस विषय में रुचि लेते हुए पढ़ाए तो ऐसी स्थिति बनेगी ही नहीं। शायद सही है। पर यह भी याद

रखना ज़रूरी है कि शिक्षक खुद पाठ्य-पुस्तक और परीक्षा के दायरे में बंधा होता है। ज़्यादातर शालाओं में बच्चों की शिक्षा का एक मात्र ज़रिया पाठ्य-पुस्तकें ही होती हैं। एक तरह से स्कूली शिक्षा पाठ्य-पुस्तकों के दायरे में बंध-सी जाती है। इसलिए भी क्योंकि परीक्षा भी सिर्फ उन सब बातों पर आधारित होती है जो पाठ्य-पुस्तकों में लिखी होती हैं। इसीलिए शिक्षा के अन्य पहलूओं के साथ-साथ पाठ्य-पुस्तकों का आकलन और मूल्यांकन भी उतना ही ज़रूरी है।

केरला में शैक्षणिक सुविधाएं

जब कभी हम किसी अच्छी शैक्षणिक प्रणाली की बात करते हैं तो आमतौर पर हम सबका आशय वहां पाई जाने वाली साधन-सुविधाओं से ही होता है। दूर-दराज़ इलाकों में भी स्कूल हों ताकि बच्चे उनमे जा सकें, शिक्षक एवं ब्लैक-बोर्ड उपलब्ध हों इत्यादि। हम उस आदर्श प्रणाली की दिशा में कार्य करना चाहते हैं जहां स्कूल में बच्चों की उपस्थिति का आंकड़ा बढ़ता चला जाए तथा बच्चों की अधबीच स्कूल छोड़ने की प्रवृति कम-से-कम हो। हमारी व्यवस्था भी तो यही चाहती है कि लड़के-लड़कियां स्कूलों में उपस्थित हों तथा बाल-श्रमिकों की संख्या कम हो ताकि बच्चों को स्कूल जाने की आज़ादी मिल सके।

ऊपर गिनाई गई बातों में से बहुतेरी केरला की शिक्षा व्यवस्था में मौजूद हैं। जहां तक बच्चों के लिए स्कूल की सुविधा का सवाल है तो केरला में ग्रामीण और

शहरी दोनों क्षेत्रों में स्कूल बहुतायत में हैं।

किसी भी शिक्षण व्यवस्था के लिए पर्याप्त साधन-सुविधाएं तथा सभी लोगों के लिए स्कूलों की सुलभता तो एक महत्वपूर्ण पहलू है ही। परन्तु क्या सीखने की ज़रूरतें इतने में पूरी हो जाती हैं? क्या यह सब होने पर निश्चित हो जाता है कि वहां अच्छी पढ़ाई होगी ही? अगर ऐसा ही होता तो केरला जैसी जगहों में भी हम अपने-आपको ऐसी स्थिति में क्यों पाते जहां बच्चे किसी-न-किसी तरह से परीक्षा-रूपी बाधा को पार करने में लगे हुए हैं, जबकि वहां ये सब सुविधाएं उपलब्ध हैं। क्या केरला व अन्य जगहों की शिक्षण व्यवस्था बच्चों में खोजी प्रतिभा को विकसित करने का या उन्हें सीखने का मौका देती है? क्या ऐसी स्थितियां हैं कि बच्चे वास्तव में सीख सकें? क्या इस व्यवस्था में शिक्षकों को छूट है कि वे ऐसी सब गतिविधियां कर सकें, करवा सकें जो बच्चों को कुछ भी सिखाने के लिए लाज़िमी हैं?

और जहां तक पाठ्य-पुस्तकों का सवाल है उनकी एक ही मुख्य भूमिका दिखाई देती है जो बच्चों को केवल परीक्षा की तरफ धकेलती है। और इन परिक्षाओं में सफलता से ही बच्चे के भावी कैरियर का फैसला होता है। इस तरह हमारी शिक्षा प्रणाली में पाठ्य-पुस्तकों की एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका बन गई है। हम यहां इन पाठ्य-पुस्तकों में से कुछ उदाहरणों की समीक्षा करेंगे। आइए, केरला की पाठ्य-पुस्तकों में भूगोल की स्थिति पर नज़र डालें।

केरला की भूगोल की पाठ्य-पुस्तकों की समीक्षा

1. कब क्या सिखाना

भूगोल की पाठ्य-पुस्तकों की विषयवस्तु को दो समूहों में बांटा जा सकता है। इनमें से एक में उन विषयों को शामिल कर सकते हैं जो आसानी से अपने आसपास देखे जा सकते हैं।

इस पहले समूह के विषय बिन्दुओं में नदियां, क्षरण, दिन और रात, जल एवं थल हवाएं, चक्रवात जैसे विषय आते हैं। दूसरे समूह में शामिल विषय बिन्दु ऐसे हैं जिन्हें हम रोज़मर्रा की ज़िंदगी में

महसूस नहीं कर पाते, या जिनका हम आसानी से निरीक्षण नहीं कर पाते। केरला की भूगोल की पाठ्य-पुस्तक का अधिकांश भाग इस दूसरे समूह के अंतर्गत आता है जिसमें वायु दाब की पेटियां, समुद्री धाराएं, अक्षांश और देशांतर, पृथ्वी की गतियां आदि शामिल हैं।

पहले समूह में शामिल विषय बिन्दु ऐसे हैं जिनका आसानी से अवलोकन कर पाना संभव है। लेकिन पाठ्य-पुस्तकों में अवलोकनों के माध्यम से इन्हें सिखाने की कोशिश कतई नहीं होती। दूसरे किस्म के विषयों को समझने के लिए अमूर्त कल्पना कर पाना बेहद ज़रूरी है। उदाहरण के लिए गोलाकार पृथ्वी की कल्पना करना जो अपने अक्ष पर झुकी है और अपनी धुरी के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने के साथ-साथ सूर्य का चक्कर भी लगा रही है। ऐसी स्थितियों की हमें कल्पना करनी होती है क्योंकि इन्हें हम प्रत्यक्ष देखकर समझ नहीं सकते। भूगोल में ऐसे सब अमूर्त विषय आमतौर पर उन अध्यायों में आ जाते हैं जिन्हें भूगोल सीखने के लिए निहायत ज़रूरी माना जाता है। और इसलिए ये अमूर्त विषय भी निचली कक्षाओं में घुस आते हैं, जिससे मामला और भी गम्भीर हो जाता है।

ऐसी स्थिति को देखते हुए अपने-आप कुछ बुनियादी सवाल उठ जाते हैं — बच्चों की पाठ्य-सामग्री में क्या होना चाहिए और उसे तय करने के लिए क्या प्रक्रिया होनी चाहिए? पाठ्य-सामग्री को ऐसा कैसे बनाया जाए कि बच्चे और शिक्षक उसका आसानी से और रुचिपूर्वक उपयोग कर सकें? साथ-ही-साथ यह सवाल भी कि पाठ्य-पुस्तकें बच्चों के लिए स्वयं खोज करने एवं सीखने का माध्यम कैसे बन सकती हैं?

कहां क्या शामिल है

बच्चों को क्या पढ़ाना चाहिए, कैसे पढ़ाना चाहिए जैसे सवालों के संदर्भ में शायद अनेक बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता होगी। विशेष तौर पर ज़रूरत है कि पाठ्य-पुस्तकें बनाने की प्रक्रिया में शिक्षा के बहुत-से अन्य पहलुओं को न सिर्फ शामिल किया जाए, बल्कि एक महत्वपूर्ण जगह दी जाए। उदाहरण के लिए बच्चों से संपर्क, अवधारणाओं को समझाने के लिए अलग-अलग तरीकों की पहचान (जिनमें अवलोकन, गतिविधियां, आपसी बातचीत के साथ-साथ कई और तरीके हो सकते हैं), शिक्षकों का योगदान आदि।
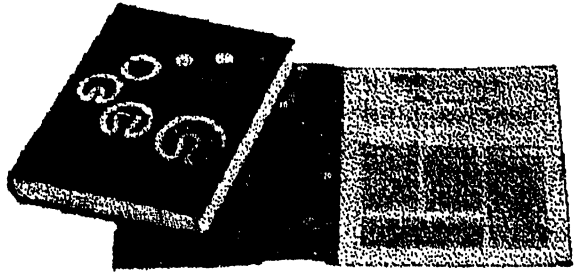
इस प्रक्रिया में इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों की क्षमताएं भी अलग-अलग होती हैं। स्कूली बच्चों के साथ अपने कुछ अनुभवों का ज़िक्र करने से समझने में शायद मदद मिलेगी।

स्कूलों में भूगोल सीखने की स्थिति का सर्वे करते समय हमने बच्चों से चर्चाएं और सामूहिक बातचीत के लिए भी समय रखा था। इस सर्वे में 'मौसम' भी एक विषय था। छठवीं कक्षा के बच्चों के साथ चर्चा के दौरान उन्होंने अधिकतर वो सब बातें कही जो प्रत्यक्ष अवलोकनों पर आधारित थीं। जैसे साल के किन महीनों में मौसम अलग-अलग पाया जाता है, ठंड एवं गर्मी में दिन और रात की लम्बाई में फर्क, लोग अलग-अलग मौसमों में क्या-क्या काम करते हैं (जैसे खेती संबंधी अलग-अलग गतिविधियां) आदि। लेकिन जब भी कोशिश की गई कि बच्चे इन अवलोकनों का पृथ्वी की गति या उसके झुकाव से संबंध जोड़कर कुछ कहें तो बच्चों में एकदम चुप्पी छा जाती।

बातचीत का दूसरा दौर दसवीं कक्षा के बच्चों के साथ किया गया। यहां बच्चों ने मौसम के बदलाव का संबंध पृथ्वी की गतियों से जोड़कर देखने की कोशिश की। यह छोटे बच्चों के साथ के अनुभवों से एकदम अलग था जो इस दिशा में कुछ भी कह या सोच ही नहीं पा रहे थे।

इस सर्वेक्षण के दौरान यह एकदम उभरकर आई कि उम्र के साथ-साथ अमूर्त बातें समझने और सोच पाने की क्षमता में कितना अंतर आ जाता है। हमारी ज़्यादातर पाठ्य-पुस्तकों में इस पहलू को एकदम नज़रअंदाज़ किया जाता है।

2. भाषा और बच्चों की उलझन

पाठ्य-पुस्तकों की भाषा काफी उलझाव से भरी होती है। कभी भी यह कोशिश नहीं की जाती कि किसी मुद्दे को विस्तार से समझाया जाए। अक्सर जटिल अवधारणाओं को मात्र एक या दो वाक्यों में निपटा दिया जाता है। यह भी लगता है कि मुख्य ज़ोर शब्दावली पर दिया जा रहा है, बनिस्बत अवधारणाओं के। यह बात पूरी पाठ्य-पुस्तक पर लागू होती है। उदाहरण के लिए कक्षा-7 के 'प्रमुख भौगोलिक रचनाएं' पाठ को देखते हैं। इस अध्याय में भौगोलिक क्षेत्रों को विभिन्न किस्मों में बांटा गया है – अवशिष्ट पहाड़, अंतरपर्वतीय पठार, उन्नत तटीय मैदान, अपरदन मैदान आदि। प्रत्येक को संक्षिप्त में 8-10 वाक्यों में समझाया गया है। बाद के वायुमंडल की संरचना, तापमान एवं दबाव पट्टियां जैसे अध्यायों में तो और भी जटिल अवधारणाओं को एक-एक छोटे से पैरा में निपटा दिया गया है। ऐसे संक्षिप्त वर्णन से बच्चों के मन में क्या छवि बनती होगी?

सातवीं कक्षा के ही एक अन्य अध्याय 'मौसम एवं जलवायु' को देखें। एक हिस्से में लिखा है, *'विभिन्न जीव-जंतुओं का वितरण जलवायु संबंधित कारकों पर निर्भर करता है। कृषि, सिंचाई, यातायात, उद्योग और मनुष्य की अन्य आर्थिक गतिविधियां भी जलवायु से नियंत्रित होती हैं।'* आपकी भी अपेक्षा होगी कि इसके बाद इन कथित संबंधों की समझ बनाने की कोशिश की जाएगी – कि सिंचाई और यातायात जलवायु से कैसे प्रभावित होते हैं। परन्तु किताब का कथानक इस सबके लिए रुकता थोड़े ही है। इस तरह से संक्षिप्त, जटिल वाक्यों का आखिर में अर्थ यह निकलता है कि बच्चों को प्रत्येक कक्षा में बहुत सारी जानकारी और तथ्य याद रखने पड़ते हैं। उन सबके बारे में सोचने, समझने, दिमाग में एक छवि बना पाने आदि का मौका मिलने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता। (इससे काफी हद तक कक्षा में शिक्षक की भागीदारी की प्रकृति भी निर्धारित हो ही जाती है।) ऐसी प्रक्रियाओं की अनुपस्थिति बच्चों की सीख पाने की सब संभावनाओं को खत्म कर देती है।

'विश्व के देशों' के बारे में जितने पाठ हैं उन सब में भी इसी

आस्ट्रेलिया के आदिवासी; बूमरेंग लिए हुए (इन्सेट में)

तरह की कमियां हैं। मज़ेदार बात यह है कि विभिन्न देशों को पढ़ाने के लिए जिन उपशीर्षकों का इस्तेमाल किया जाता है, वे इन सब पाठों में एक समान होते हैं – जैसे कि उद्योग, कृषि, जलवायु, पशुपालन आदि। इससे इन अलग-अलग देशों के बारे में हमारे मन में कोई स्पष्ट, विशिष्ट छवि नहीं बन पाती।

स्वाभाविक है, इन सबसे हमारे मन में यह सवाल उभरता है कि ये पुस्तकें किस हद तक जो कहना चाहती हैं वो बच्चों तक पहुंच पाता है। और इसीलिए पाठ्य-पुस्तकों को बच्चे कभी भी रुचि के कारण या मज़ा आ रहा है, इसलिए पढ़ते दिखाई नहीं देते।

3. 'दुनिया के लोग'

प्रादेशिक भूगोल के अंतर्गत आने वाले अध्यायों में विश्व के अलग-अलग स्थानों में रहने वाले लोगों की जीवन शैली की चर्चा की गई है। पुस्तकों में कुछ अध्याय हैं जो विश्व के विभिन्न देशों से संबंधित हैं। छठवीं से दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई के दौरान बच्चे एक दर्ज़न से ज़्यादा देशों के बारे में पढ़ते हैं। यह देखा गया है कि अलग-अलग तरह की जलवायु में रहने

वाले लोगों की विशेषताओं तथा जीवन शैली के बारे में गंभीरता पूर्वक चर्चा नहीं की गई है। जिस तरह से उनके बारे में लिखा होता है उससे समझ की कमी साफ झलकती है।

आस्ट्रेलिया पर लिखे गए पाठ में यह बात उभरकर सामने आती है। यह पाठ छठवीं कक्षा में पढ़ाया जाता है जिसमें आस्ट्रेलिया के आदिवासियों के बारे में चर्चा की गई है। उसके कुछ अंश प्रस्तुत हैं;

"ये आदिवासी काले और नाटे लोग हैं। वे शिकार और खाद्य-संग्रह करके अपना जीवन यापन करते हैं। ये लोग एक विचित्र किस्म का हथियार इस्तेमाल करते हैं जिसे बूमरेंग कहते हैं। .... गोरे लोगों और गोरे लोगों के रीति-रिवाज़ों का इन लोगों की जीवन शैली पर बहुत प्रभाव पड़ा है। सरकार ने इन लोगों के विकास के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं।"

जो लोग हम जैसे नहीं दिखते और जिनकी जीवन शैली हमसे अलग है उनके बारे में एक अजीबो-गरीब समझ का ही यह उदाहरण है।

भूगोल में हमेशा से यह मान्यता रही है कि पृथ्वी के विभिन्न भागों की जलवायु आदि का वहां के लोगों के रहन-सहन से करीब का संबंध होता है। लेकिन ऊपर के पैरा में बताई बातें ऐसे किसी सहसंबंध का परीक्षण नहीं करती।

प्राकृतिक भूगोल के कुछ अध्यायों में भौगोलिक रचनाओं और मनुष्य के बीच संबंध बताने के प्रयास दिखते हैं। एक अध्याय में मनुष्य और पहाड़, पठार व मैदान जैसी भौगोलिक रचनाओं के बीच जुड़ाव दिखाए गए हैं। भूगोल में ऐसे सहसंबंध का ज़िक्र स्वाभाविक ही है। परन्तु इन अध्यायों में भी बारीकियों में जाने के बजाए, केवल कुछ मोटी-मोटी बातों तक ही सीमित रखा गया है उन्हें। उदाहरण बतौर, पहाड़ी इलाकों और मनुष्य के लिए केवल यह कहा गया है कि वहां के लोगों का जीवन-स्तर नीचा होता है, आ:बादी कम होती है और अपर्याप्त कृषि उत्पादन। वहां की मिट्टी, बारिश, ऊंचाई, तापमान आदि पर चर्चा नहीं की गई – जिनसे निर्धारित होता है कि किसी भी इलाके में लोग खेती के कौन-से तरीके अपनाएंगे। वहां के लोग जीवन-यापन के लिए करते क्या हैं? या फिर पहाड़ी इलाकों में रहने वाले लोगों की ज़िंदगी में पशुपालन और ऐसी अन्य गतिविधियों का क्या महत्व है? ऐसे सब सवालों और पहलुओं का कोई ज़िक्र नहीं मिलता इन अध्यायों में।

जांच-परख की ज़रूरत

जब तक हमारे स्कूलों में सवाल पूछने या चर्चा करने का माहौल नहीं है तब तक स्कूली बच्चे यही मानकर चलेंगे कि जो भी बातें प.ठ्य-पुस्तक में होती हैं उन्हें ज्यों का त्यों मान लेना चाहिए। इन हालातों में पाठ्य-पुस्तकें कहीं ज़्यादा गौर से लिखे जाने और जांचने-परखने की ज़रूरत है।

(यमुना सनी – एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से संबद्ध।)

पोलियो और पक्षाघात

सवाल: आखिर यह पोलियो कौन-सी बीमारी है? अगर बच्चे को पोलियो की दवा नहीं पिलाई जाए तो बच्चा अपाहिज क्यों हो जाता है?

जवाब: आप इतना तो जानते ही हैं कि पोलियो वह बीमारी है जिसके होने पर बच्चा अपाहिज हो जाता है। लेकिन सिर्फ इतने से जवाब से न आप संतुष्ट होंगे न हम। क्योंकि यह अधूरा तो है ही पर क़ाफी हद तक गलत भी है।

पक्षाघात और पोलियो का इतना भी गहरा संबंध नहीं है। पोलियो के अधिकांश रोगी तो थोड़ी खांसी-जुकाम और बुखार के बाद ऐसे स्वस्थ हो जाते हैं जैसे इन्हें पोलियो हुआ ही न हो और यह भी संभव है कि व्यक्ति को खांसी-जुकाम जैसी चीज़ भी न हो फिर भी डॉक्टरी भाषा में उसे पोलियो का रोगी कहा जाए। तो फिर पोलियो क्या है?

पोलियो (पोलियो मेलाईटिस) एक

संक्रामक रोग है जो कुछ विशेष प्रकार के विषाणुओं के ज़रिए होता है। ये विषाणु भोजन अथवा सांस लेने के रास्ते एक संक्रमित व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्तियों तक पहुंचकर उन्हें भी रोग ग्रसित कर सकते हैं। जिस भी व्यक्ति के अंदर ऐसे विषाणु पल रहे हों वह पोलियो फैलाने की क्षमता रखता है भले ही उसके अंदर रोग के लक्षण आंशिक ही क्यों न हों।

पोलियो के विषाणु शरीर में दो स्थानों को अपना घर बनाते हैं – आंतें या गला। यहां से ये मल या सांस और थूक के द्वारा बाहर निकलकर अन्य स्वस्थ लोगों तक पहुंच सकते हैं। विषाणुओं के यातायात का साधन होते हैं कॉकरोच, मक्खी, हवा या फिर रोगी के अपने हाथ।

आंतों तक ये विषाणु या तो सीधे रास्ते यानी कि दूषित भोजन पर बैठकर या फिर उल्टे रास्ते से मल विसर्जन के बाद उपयोग में लाए गए पानी द्वारा

पहुंचते हैं। इस कारण मल विसर्जन के बाद साफ पानी का उपयोग करना चाहिए। और रोग से बचने के लिए खाने वाली चीज़ों को गंदे हाथ न लगाना और कच्चे फल-सब्ज़ी को ठीक से धोना ज़रूरी है।

कितनी भी सावधानी रखी जाए रोग के फैलने का खतरा तो अवश्य ही बना रहता है और इसलिए बच्चों को पोलियो की दवा पिला देना बहुत आवश्यक है। ऐसा करने से उनके लिए इस रोग से बचाव निश्चित हो जाता है।

* *

तो अब रोग के लक्षणों पर चलते हैं। जैसा कि शुरूआत में ज़िक्र किया गया है कि पोलियो रोगी के गले में या फिर उसकी आंतों में बसे विषाणुओं के कारण होता है। रोग के लक्षण विषाणुओं के बसने के स्थान पर निर्भर करते हैं।

गले में पहुंचे विषाणुओं का असर रोगी की गर्दन तक ही सीमित रहता है। इस में पहले रोगी को खांसी-जुकाम होता है जो तीसरे दिन तक गर्दन-तोड़ बुखार के लक्षणों में परिवर्तित हो जाता है। ऐसे में रोगी की गर्दन जकड़ जाती है और कुछ रोगियों को सांस लेने और निगलने में बहुत कठिनाई होती है। ऐसी स्थिति में रोगी का दम घुटने का खतरा होता है इसलिए उसे ज़्यादा हिलाना नहीं चाहिए। ऐसी अवस्था में रोगी को चिकित्सक की निगरानी में रखना भी ज़रूरी है। वैसे इस पीड़ा से गुज़रने के बाद अधिकांश रोगी 2-4 हफ्ते में खुद-ब-खुद स्वस्थ हो जाते हैं और अपाहिज नहीं होते। परन्तु सबसे घातक अपाहिज करने वाला पोलियो आंतों में बसे विषाणुओं के कारण होता है। ऊपर बतलाए गए किसी एक तरीके से जब ये विषाणु व्यक्ति की आंतों में पहुंच जाते हैं तो सबसे पहले ये अपनी तादाद बढ़ाते हैं। रोगी का शरीर इस पहली अवस्था में विषाणुओं से लड़ने की कोशिश करता है और रोगी को दस्त होने लगते हैं।

अगर विषाणु शरीर की बचाव प्रणाली को हराने में सफल हो जाते हैं तो रोग दूसरी अवस्था तक पहुंच जाता है। इसमें विषाणु आंतों से सेंट्रल नर्वस सिस्टम तक पहुंचते हैं जहां ये मांस-पेशियों को नियंत्रित करने वाली नसों की कोशिकाओं पर हमला कर उन्हें नुकसान पहुंचाते हैं इससे मास-पेशियां ढीली पड़कर सिकुड़ने लगती हैं। इस सबसे प्रभावित अंगों में बहुत पीड़ा होती है और विषाणुओं का संहार होने तक शरीर के एक या एक से अधिक अंग बेकार हो जाते हैं।

पक्षाघात ज़्यादातर टांगों में होता है। अगर बच्चे की आयु पांच वर्ष से कम हो तो देखा गया है कि उसका एक ही पैर खराब होता है और पांच वर्ष से अधिक आयु के बच्चे के दोनों पैर बेकार हो जाते हैं। इस अवस्था का कोई इलाज नहीं है। और बच्चा शेष जीवन भर बैसाखी का सहारा लेने के लिए मजबूर हो जाता है। तबाही मचाने के कुछ दिनों बाद विषाणु रोगी के शरीर को छोड़ देते हैं जिसके बाद रोगी से रोग फैलने का खतरा नहीं रहता।

* *

शरीर में रहने के चार तरीके

पोलियो के विषाणु जब हमारे शरीर में घुस जाते हैं तो चार संभावनाएं होती हैं:

1. विषाणु पेट में ही नष्ट हो जाएंगे और बीमारी नहीं होगी।
2. पेट (अमाशय) में विषाणु फलते-फूलते रहते हैं परंतु बीमारी नहीं होती। यह अक्सर तंग बस्तियों में होता है जहां शिशु दूषित पानी/भोजन/मल के संपर्क में आते हैं। इन बच्चों के शरीर में पोलियो के विषाणु का सामना करने के लिए प्रतिरोधात्मक शक्ति पैदा हो जाती है।
3. विषाणु पेट से निकलकर पूरे शरीर में खून के साथ घूमते हैं, कुछ सर्दी, जुकाम, बुखार, दस्त, बदन दर्द जैसे लक्षण होते हैं परंतु लकवा नहीं मारता।
4. विषाणु पेट से पूरे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। बच्चा बीमार हो जाता है। सर्दी-जुकाम, बदन दर्द, हाथ पांव में दर्द आदि होता है। विषाणु रीढ़ की हड्डी और मस्तिष्क की तंत्रिका कोशिकाओं को नष्ट करना शुरू कर देते हैं। इनसे जुड़ी मांस पेशियां कमज़ोर हो जाती हैं। इसलिए हाथ-पांव या श्वसन तंत्र की मांस पेशियां निष्क्रिय हो जाती हैं।

हो सकता है आप पूछें कि पोलियो से कुछ बच्चे तो अपाहिज हो जाते हैं और कुछ को खांसी-जुकाम भी नहीं होता, ऐसा क्यों? दूसरा सवाल कि पोलियो अधिकतर बच्चों को ही क्यों होता है? इन दोनों सवालों से मिलता-जुलता एक और सवाल है कि झुग्गी-झोपड़ियों, जहां कि साफ-सफाई की कोई विशेष व्यवस्था नहीं होती, में रहने वाले बच्चों की तुलना में शहर के मध्यम वर्गीय परिवारों के बच्चों में यह बीमारी अधिक क्यों होती है?

इन तीनों सवालों का जवाब है कि रोग का होना, न होना और रोग के होने की हद हमारे शरीर की रोग से निपटने की क्षमता पर निर्भर करती है। शरीर विभिन्न प्रकार के रोगाणुओं से लड़कर धीरे-धीरे उनसे लड़ने की क्षमता बना लेता है। देखा गया है कि झुग्गियों में रहने वाले बच्चों का शरीर बार-बार रोगाणुओं से लड़कर उनसे जूझने में निपुण हो जाता है। इस कारण सफाई में रहने वाले बच्चों की तुलना में ये गरीब बच्चे कम बीमार पड़ते हैं।

(रोगों से लड़ने की क्षमता 'इम्यूनिटि' के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए देखें संदर्भ अंक- 5)

अब हम उस सवाल पर आते हैं कि अगर बच्चे को पोलियो की दवा न पिलाई जाए तो वह अपाहिज क्यों हो जाता है? पहले तो हम यह देखें कि आखिर यह दवा क्या करती है और तीन-चार बार पिलाने से बच्चा आजीवन पोलिओ से सुरक्षित कैसे बना रहता है। इसका जवाब देने के लिए शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र की बात करना ज़रूरी है।

जब रोगाणु (पोलियो के विषाणु,

कैसे पहचानें

साधारण बीमारी: शुरूआत में पोलियो एक सामान्य जुकाम के रूप में शुरू होता है – नाक बहती है, हल्का बुखार, सिरदर्द, बेचैनी, गले में दर्द, उल्टी, दस्त हो सकते हैं।
ज़्यादातर बच्चे इस बीमारी के बाद ठीक हो जाते हैं।

मुख्य बीमारी: साधारण बीमारी के 2-3 दिनों बाद कुछ बच्चों में ये सब लक्षण दिखाई देते हैं–

– *बुखार फिर से आता है।*
– *सर दर्द करता है।*
– *गर्दन अकड़ जाती है जिससे यह पता चलता है कि पोलियो विषाणु मस्तिष्क पर हमला कर चुका है।*
– *बाहों, टांगों व पीठ में दर्द होता है। हाथ-पांव का दर्द होने पर अनुमान लगाया जा सकता है कि लकवा मारेगा।*

लकवा: गर्दन के अकड़ने के 12-72 घंटे के बीच लकवा मार सकता है। लकवे का प्रभाव सबसे ज़्यादा 48 घंटे तक रहता है। लकवा केवल एक या दोनों ही पांव, जांघ, कंधे की मांसपेशियों को प्रभावित कर सकता है। किसी-किसी मामले में श्वसन तंत्र की मांसपेशियां शिथिल हो जाती हैं जिससे बच्चे को निगलने, सांस लेने और बात करने में कठिनाई होती है। ऐसी स्थिति में बच्चे की जान को भी खतरा हो सकता है। लकवा कितना गंभीर है वह इस बात पर निर्भर करेगा कि रीढ़ की हड्डी व मस्तिष्क पर पोलियो के विषाणुओं ने कितना दमदार प्रहार किया है।

***साढ़े तीन हज़ार साल पहले:** इजिप्त में मिली साढ़े तीन हज़ार साल पुरानी प्रतिकृति; जिसमें खड़े दिख रहे आदमी का एक पांव कमज़ोर है। जिन बीमारियों के बारे में इंसान को बहुत पहले से मालूम है उनमें से पोलियो एक है।*

नीम हकीम खतरे जान

पोलियो की बीमारी का एक विचित्र पहलू यह भी है कि बच्चे को जल्दी से ठीक करवाने की हड़बड़ाहट में इंजेक्शन लगवा देने से भी पोलियो लकवे में बदल सकता है।

अगर किसी बच्चे को पोलियो हुआ है तो यह गलतफहमी आसानी से हो जाती है कि उसे साधारण सर्दी-जुकाम-बुखार है। ऐसी स्थिति में अगर इस बुखार को ठीक करने के लिए उसे इंजेक्शन लगा दिया जाए तो इंजेक्शन की वजह से हाथ-पैर की मांसपेशियों को जो तकलीफ होती है, उसके कारण बच्चे के हाथ-पैर को लकवा मार सकता है।

पोलियो आमतौर पर टांगों में इसलिए होता है क्योंकि बच्चों को अधिकतर पुट्ठों पर इंजेक्शन लगाया जाता है।

इसलिए बच्चे का इलाज करते वक्त यह सावधानी अत्यन्त ज़रूरी है कि उसे इंजेक्शन तब तक नहीं लगवाना चाहिए जब तक कि बेहद ही ज़रूरी न हो। बारिश के मौसम में और भी ध्यान रखना चाहिए क्योंकि उस मौसम में पोलियो होने की संभावना ज़्यादा होती है।

अन्य विभिन्न प्रकार के विषाणु, (बेक्टीरिया) दूषित भोजन, हवा, पानी इत्यादि के रास्ते हमारे शरीर के अंदर घुस आते हैं तो शरीर इनसे लड़ने का पूरा प्रयत्न करता है। बुखार आना इस लड़ाई का संकेत है। रक्त में पाए जाने वाले कुछ श्वेत कण सिपाहियों की तरह इन रोगाणुओं से डटकर जूझते हैं इस लड़ाई में जब हमारे ये सिपाही विजयी होते हैं तो हम स्वस्थ बने रहते हैं और जब रोगाणु विजयी होते हैं तो हम बीमार पड़ जाते हैं।

लेकिन हार जाने के बाद भी श्वेतकण (लिम्फोसाइट) चुप नहीं बैठते। रोगाणुओं के शरीर पर पाए जाने वाले आणविक समूहों (एंटीजन) के आधार पर लिम्फोसाइट उनकी पहचान कर लेते हैं। शत्रु की पहचान हो जाने के बाद हमारे सिपाही ऐसे हथियार तैयार करते हैं कि अगर वही दुश्मन दुबारा हमला करे तो उसे तुरंत हराया जा सके। सुरक्षा के इस हथियार को एंटीबॉडी कहते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि एंटीबॉडी केवल उसी प्रकार के रोगाणुओं से शरीर की रक्षा करते हैं जिनके विरुद्ध इनका निर्माण हुआ हो। इसलिए शरीर को अलग-अलग रोगों से लड़ने के लिए अलग-अलग एंटीबॉडी बनानी पड़ती है। मीसल्स, चिकनपॉक्स, पीलिया आदि की एंटीबॉडी एक बार बनने के बाद आजीवन शरीर में बनी रहती है इसलिए ये रोग एक बार तो बच्चों को सताते हैं लेकिन दोबारा नहीं होते। कुछ रोगों के एंटीबॉडी बनने के बाद थोड़े ही समय में नष्ट हो जाते हैं

इस कारण ऐसे रोगों से हम दूसरी या तीसरी बार भी पीड़ित हो सकते हैं। शरीर के इस एंटीबॉडी भंडार को ही 'बचाव-प्रणाली' या 'इम्यूनिटि' कहते हैं।

टीके यानी रोगाणु

अगर हमारा शरीर पोलियो से ग्रसित नहीं हुआ है लेकिन हम फिर भी चाहते हैं कि हमारे शरीर में उसकी एंटीबॉडी तैयार रहे ताकि भविष्य में कभी उसके रोगाणुओं का हमला होने पर उनका मुकाबला किया जा सके तो उसका भी उपाय है। यह काम टीके द्वारा हमारे शरीर में निर्बल या मृत रोगाणु घुसाकर किया जाता है। जब ऐसे रोगाणुओं का टीके अथवा दवा के रूप में शरीर में प्रवेश होता है तो रोग ग्रसित हुए बिना ही हमारा शरीर उनके एंटीजन को पहचान कर वैसी ही एंटीबॉडी बना लेता है। जब तक ये एंटीबॉडी हमारे शरीर में रहती है हम उस रोग से मुक्त रहते हैं।

टीके तीन प्रकार के होते हैं। पहले वे जिनको बनाने के लिए मृत रोगाणुओं का प्रयोग किया जाए और दूसरे वे जिनको बनाने के लिए किसी विशेष प्रक्रिया द्वारा रोगाणुओं को इतना निर्बल कर दिया जाए कि वे एंटीबॉडी बनवाने के अलावा शरीर पर कम-से-कम असर करें।

पहले प्रकार के टीके (या दवाएं) काली खांसी, टायफाइड, रेबीज़ के रोगाणुओं से और जीवित टीके पोलियो, तपेदिक, खसरा और येलो फीवर से

उपचार

चूंकि पोलियो विषाणु को नष्ट करने की कोई दवा नहीं है इसलिए इसे ला-इलाज भी कहा जा सकता है। प्रतिजीवाणु दवाएं (एंटीबायोटिक्स) इन विषाणुओं को नष्ट नहीं कर सकती इसलिए उन्हें इस्तेमाल करने से भी फायदा नहीं होता।

परंतु घर पर कई उपचार किए जा सकते हैं जिनसे बच्चे को आराम मिल सके:

1. बुखार और दर्द के लिए पेरासिटामॉल की गोली दे सकते हैं।
2. बच्चे को 6 हफ्ते तक पूरी तरह बिस्तर पर आराम करना चाहिए क्योंकि चलने-फिरने से लकवा बढ़ सकता है।
3. दर्द कर रहे जोड़ों और मांसपेशियों पर गर्म पानी में भीगा हुआ तौलिया रखने से सुकून मिलता है।
4. घुटनों तथा हाथों के नीचे नर्म तकिए (या तह किया हुआ कपड़ा) रखें।
5. बिस्तर पर लगातार लेटे रहने से होने वाले घावों से बचने के लिए नियमित रूप से बच्चे की करवट बदलते रहें।
6. टांग टेढ़ी-मेढ़ी न हो इसके लिए टांगों को सीधा रखना ज़रूरी है। उन्हें बांस या लकड़ी की खपच्ची के साथ भी बांधा जा सकता है।
7. किसी भी प्रकार का इंजेक्शन न दें क्योंकि इससे लकवा बढ़ सकता है।

दवाई कब-कब

1. बच्चे को जन्म पर, जन्म के पैंतालिस दिन बाद और डेढ़ साल का होने पर पोलियो की खुराक पिलानी चाहिए।
2. यदि बच्चा तीन साल से कम है और उसे कभी पोलियो की दवा नहीं पिलाई गई तब भी उसे पोलियो की दवा पिलानी चाहिए।
3. यदि बच्चे को पोलियो हो चुका है और वह तीन साल से कम उम्र का है तब भी उसे पोलियो की दवा पिला देनी चाहिए ताकि उसे दूसरी तरह के पोलियो विषाणुओं से फिर से पोलियो न हो।
4. पोलियो की दवा दस्त में भी दी जा सकती है। लेकिन दस्त में इसका असर पूरी तरह से नहीं होता। इसलिए दस्त वाले बच्चे को खुराक ज़रूर पिलाएं परंतु दस्त बंद होने पर दवा फिर से पिलाएं।
5. पोलियो की दवा पिलाने के बाद बच्चों को मां का दूध पिलाया जा सकता है। खुराक पिलाने के आधा घंटा पहले, और आधा घंटा बाद कोई गरम चीज़ नहीं पिलानी चाहिए।
6. पोलियो के विषाणुओं को जीवित रहने के लिए विशेष तापक्रम चाहिए – न ज़्यादा ठंड, न ज़्यादा गर्मी। क्योंकि पोलियो की दवा इन्हीं विषाणुओं से बनती है इसलिए दवा को फ्रिज में रखना ज़रूरी है ताकि ये विषाणु ज़िंदा रहें। इसलिए एक जगह से दूसरी जगह लेकर जाते वक्त भी उसे ठंडे डिब्बे में रखना पड़ता है। पोलियो की दवा पर सीधी धूप भी नहीं पड़नी चाहिए।

हमारा बचाव करते हैं।

तीसरे प्रकार के टीके हमारा टिटेनस से बचाव करते हैं और इन्हें टॉक्साइड कहा जाता है। इनके बारे में फिर कभी बात करेंगे।

काफी लम्बी चर्चा हो गई लेकिन संक्षेप में देखें तो बात इतनी है कि अगर बच्चे को पोलियो की दवा नहीं पिलाई जाए तो यह ज़रूरी नहीं है कि उसे पोलियो हो ही जाएगा। जब तक बच्चे के शरीर में पोलियो का रोगाणु प्रवेश न कर जाए तब तक बच्चे को भला पोलियो कैसे हो सकता है? और अगर पोलियो के रोगाणु शरीर में घुस भी जाएं तो यह भी संभव है कि हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली उन्हें खदेड़ दे। और यदि बच्चे को पोलियो की दवा पिलाई जाए तो उसके शरीर में पोलियो के रोगाणु से लड़ने वाली एंटीबॉडी तैयार हो जाएंगी जो पोलियो के रोगाणुओं के किसी भी हमले को नाकाम करने में समर्थ होंगी।

इस बार सवालीराम ने जो सवाल पूछा है वो पेज नं. 10 पर है

ज़रा सिर तो खुजलाइए

पानी, प्लास्टिक का टुकड़ा और कपूर

पिछले अंक में हमने आपसे एक सवाल पूछा था कि क्या वजह है कि प्लास्टिक की जीभी से बनी मछली की दुम में कपूर का टुकड़ा फंसाने से मछली चल पड़ती है? शुरू में तो हमें भी ऐसा ही लगा कि इस सवाल का जवाब काफी आसान होना चाहिए लेकिन जैसे-जैसे सवाल की पेचिदगियों में गए तो पता चला कि मामला कुछ टेढ़ा है। सैद्धांतिक स्तर पर कुछ समझ बन जाए, फिर भी बहुत से व्यवहारिक/प्रायोगिक सवाल अभी भी हैं, इसलिए और बहुत कुछ करके देखने की गुंजाइश भी! ऐसे सब सवाल अभी तो अंत के लिए संभालकर रखते हैं, क्योंकि छानबीन से जो पता चला वह भी अपने आप में कम दिलचस्प नहीं है।

अगर कारणों का हमें पता न हो तो इस दुनिया में ऐसी घटनाओं की कमी नहीं जो हमें सिर्फ रहस्यमय ही नहीं अपितु दैवी प्रभावों से भी प्रेरित लगें। मिसाल के तौर पर पिछले साल गणेशजी की मूर्तियों के दूध पीने की अविस्मरणीय घटना को ही लें। श्रद्धालुओं की नज़रों में मूर्तियों का दूध पीना एक दैवी चमत्कार था। परन्तु वैज्ञानिकों के ख्याल से इस सब के पीछे थी एक सरल अवधारणा पृष्ठ तनाव - सरफेस टेंशन। (उस घटना में सवाल शायद नज़रों का भी था क्योंकि पृष्ठ तनाव से तो दूध केवल कहीं-कहीं मूर्तियों की तरफ खिंच रहा था, गायब कतई नहीं हो रहा था।) हमारे सवाल का जवाब भी पृष्ठ तनाव से जुड़ा हुआ है। अतः इससे पहले कि हम मूल प्रश्न पर आएं, पृष्ठ तनाव की अपनी समझ को पुख्ता कर लेते हैं।

जैसा कि आप जानते होंगे, तरल पदार्थों में द्रव के अणु ठोस पदार्थों के अणुओं की तरह एक ही जगह पर बंधे हुए नहीं होते। वे द्रव के अंदर इधर-

उधर विचरते रहते हैं। परंतु यह विचरण गैस के अणुओं की तरह पूरी स्वतंत्रता के साथ बलहीन अवस्था में नहीं होता। द्रवों के अणु द्रव में घूमते-फिरते ज़रूर हैं पर साथ-साथ अपने पड़ोसी अणुओं को एक स्प्रिंगनुमा बल के द्वारा भी प्रभावित करते रहते हैं। (ऐसा गैसों में नहीं होता।)
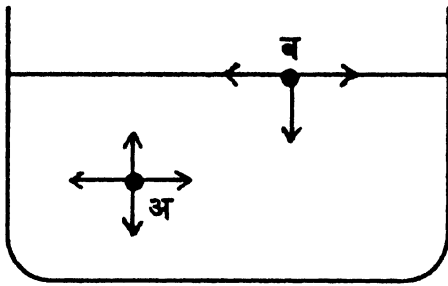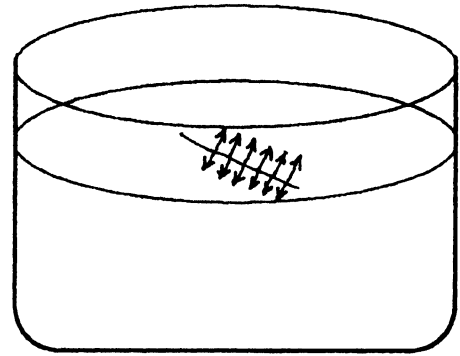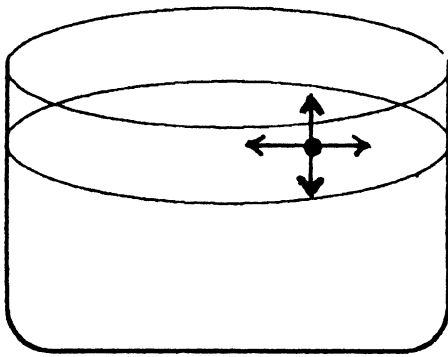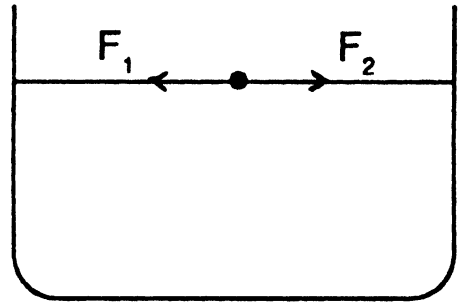
चलिए अब बात करते हैं उस पानी की जिसमें आप अपनी प्लास्टिक की मछली दौड़ा रहे हैं। इस पानी के दो अणुओं 'अ' और 'ब', पर गौर करें (चित्र-1) – 'ब' अणु सतह पर है और 'अ' अणु सतह के नीचे, पानी के अंदर।

जैसा कि आप चित्र में देख रहे हैं, 'अ' अणु चहुं ओर से अपने जैसे अणुओं से घिरा हुआ है। इस अणु के पड़ोसी अणु उस पर सभी दिशाओं में बराबर मात्रा में आकर्षण बल लगाते हैं। नतीजा: 'अ' अणु पर लगने वाला कुल बल शून्य ही होगा (अगर केवल इसी बल पर गौर करें, अन्य बलों को हम छोड़ दें)। परंतु 'ब' अणु इतना खुशकिस्मत कहां? चूंकि यह अणु सतह पर है, इसके ऊपर पानी के अणु नहीं

होंगे। इस वजह से पड़ोसी अणुओं द्वारा लगाया जाने वाला बल इस अणु पर सभी दिशाओं में लगेगा, सिवाय ऊपर के । अतः इस अणु पर लगने वाले बल पूर्ण रूप से एक-दूसरे से संतुलित नहीं हो पाते।

परिणाम साफ है – 'ब' अणु व अन्य सभी सतह पर मौजूद पानी के अणुओं पर एक परिणामी बल नीचे की दिशा में लगता है।

लाज़िमी है कि इस बल के कारण सतह के सभी अणु सतह के अंदर घुसना चाहेंगे। अब सभी अणु अंदर घुस जाएं, यह तो असंभव है। आखिर कुछ को तो सतह पर रहना ही पड़ेगा।

ऐसी स्थिति में दो असर होते हैं। पहला, पानी अपनी सतह का क्षेत्रफल न्यूनतम रखने का प्रयास करेगा। वैसे यह ज़रूरी नहीं है कि पानी इस प्रयास में हमेशा सफल हो ही जाए। अन्य बलों (जैसे गुरुत्व बल, अन्य पदार्थों के साथ आकर्षण-विकर्षण आदि) की मौजूदगी के कारण, कई बार आप पाएंगे की पानी की सतह का क्षेत्रफल न्यूनतम संभव मान से ज़्यादा है। कांच की नली के अंदर ही पानी को देखिए न, पानी की खुली सतह कम-से-कम क्षेत्रफल रखते हुए सपाट रहने की बजाए, गोलाई लिए रहती है।

दूसरा असर पहले से जुड़ा हुआ है। वह यह है कि पानी की सतह पर एक खिंचाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यानी सतह के हरेक बिन्दु पर चारों दिशाओं में बराबर मात्रा में बल लगते हैं (चित्र-2)–अणुओं के आपसी आकर्षण के कारण, जो उस बिन्दु को अपनी-अपनी ओर खींचने का प्रयास करते हैं

अब जैसा कि स्वाभाविक है, इस खिचांव के कारण पानी की सतह पर एक तनाव पैदा हो जाता है। ठीक वैसा ही जैसा आप एक ढोलक पर तनी हुई चमड़े की खाल में महसूस करते हैं।

यह खाल इसी तनाव के कारण तनी हुई रहती है। यह एक आम अनुभव की बात है कि जब इस तरह की तनी हुई सतहों को आप अपने अंगूठे द्वारा हल्के से दबाने का प्रयास करते हैं तो सतह इस दवाब के कारण थोड़ी-सी दबती ज़रूर है पर शीघ्र ही खाल का सतही तनाव आपके अंगूठे पर, आपके द्वारा लगाए बल के बराबर और विपरीत दिशा में, बल लगाने लगता है। फलस्वरूप आप सतह को और अधिक नहीं दबा पाते। हां, यह बात ज़रूर है कि हरेक ऐसी सतह की दवाब सहने की अपनी-अपनी क्षमता होती है। ज़ोरों की थाप देने से फट चुकने वाले ढोल इस हकीकत के बेसुरे गवाह हैं! बहरहाल, गौरतलब बात यह है कि इस सतही तनाव के कारण पानी और अन्य तरल पदार्थों की सतह भी ऐसे गुण प्रदर्शित करती है। यह सतही तनाव भौतिकी में पृष्ठ-तनाव के नाम से जाना जाता है।

इस पृष्ठभूमि के संदर्भ में आइए अब ज़िक्र करते हैं अपने मूल प्रश्न का। बिना कपूर वाली मछली को जब हम
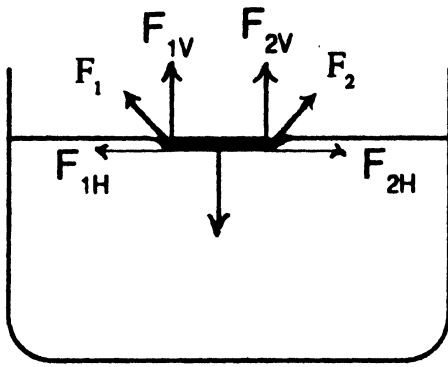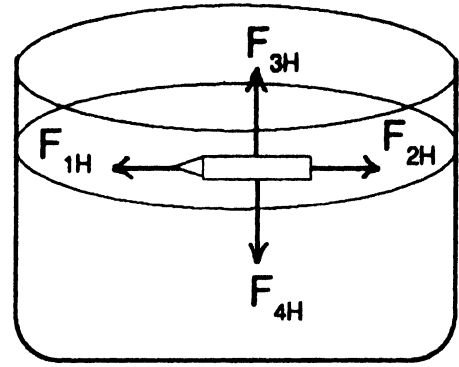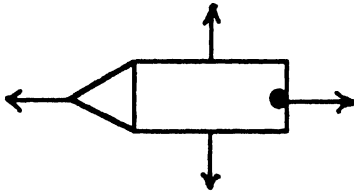
पानी में छोड़ते हैं तो वह एक स्थान पर तैरती ज़रूर है पर इधर-उधर नहीं भागती। चलिए समझते हैं कि ऐसा क्यों होता है। पृष्ठ तनाव सतही होने के कारण पानी की सतह के समांतर दिशा में सक्रिय रहता है (चित्र-3 व 4)।

मछली को जब हम पानी पर छोड़ते हैं तो अपने वज़न के कारण मछली सतह को थोड़ा-सा दबा देती है। मछली के पास सतह थोड़ी अंदर की ओर मुड़ जाएगी। मछली के इर्द-गिर्द सतह के इस आकार परिवर्तन के कारण पृष्ठ तनाव बल जो मछली की अनुपस्थिति में ठीक समांतर दिशा में होता था, अब थोड़ा ऊपर की ओर हो जाएगा (चित्र-5)।

ऐसी स्थिति में मछली के पास के पृष्ठ तनाव बल (F_1) को दो घटकों के परिणाम के रूप में देखा जा सकता है – समांतर और लंबवत घटकों, F_{1V} और F_{1H} । पानी की सतह मछली के वज़न का दबाव सहन कर पाने में इसलिए सक्षम हो पाती है क्योंकि पृष्ठ तनाव बलों के सभी लंबवत घटकों का योग मछली के वज़न के बराबर होता है तथा मछली पर ऊपर की दिशा में लगता है।

मछली को पानी में यूं चलाइए

हो सकता है आपने हमारा सवाल पढ़ने के बाद मछली चलाने की कोशिश की होगी। और हो सकता है आपको वैसी कामयाबी न मिली हो जैसी आपको दरकार थी। हम भी आपको कुछ राज़ की बातें बता रहे हैं। ताकि मछली देर तक पानी में चलती रहे।

जिस थाली में आप पानी ले रहे हो उसे साबुन से साफ कर लीजिए। फिर उसमें साफ पानी भरकर अखबारी कागज़ के बड़े-बड़े तीन-चार टुकड़े पानी मे से डुबोकर निकालिए। इस बात का ध्यान रखिए कि कागज़ को डुबोते समय आपका हाथ पानी को न छुए। इस तरह कागज़ डुबोकर निकालने से पानी की ऊपरी परत से तेल वगैरह निकल जाते हैं।

इस साफ पानी में कपूर लगी मछली को किसी चिमटी की मदद से धीरे-से छोड़िए।

जब मछली पानी पर तेज़ी से गोल-गोल घूमने लगे तो एक छोटा-सा प्रयोग करके देखिए। अपनी अंगुलियां बालों पर रगड़िए और फिर थाली के पानी में एक अंगुली को डुबोइए।

क्या हुआ.......?

अब इस मछली को फिर से चलाने का एक ही तरीका है कि मछली को चिमटी से पकड़ कर एक किनारे करो और फिर से अखबारी कागज़ के चार-पांच टुकड़े इस पानी में से डुबाकर बाहर निकालो। मछली फिर से चलने लगेगी। वैसे सोचने वाली बात है कि अंगुली पानी में डुबोने से मछली क्यों रुक गई। शायद आप इस बात को समझ रहे होंगे।

यही वजह है कि मछली पानी में डूबती नहीं है। अब देखते हैं कि मछली इधर-उधर भागती क्यों नहीं है। दरअसल ऐसा तभी हो सकता है बशर्ते मछली पर सतह के समांतर दिशा में कोई परिणामी बल लगे।

अब जैसा कि हम चित्र-6 में देख सकते हैं, पृष्ठ तनाव के समांतर घटक (F_{1H}, F_{2H} इत्यादि) मछली पर समांतर दिशा में ही लगते हैं। चूंकि पानी की सतह के हरेक बिंदु पर पृष्ठ तनाव बल का मान एक समान रहता है, इसलिए इन घटकों का मान भी बराबर माना जा सकता है (यानी $F_{1H} = F_{2H}$) और क्योंकि ये घटक एक दूसरे के विपरीत दिशा में होते हैं

लिहाज़ा मछली पर समांतर दिशा में लगने वाला परिणामी पृष्ठ-तनाव बल शून्य ही रहता है। मछली पर समांतर दिशा में लगने वाले अन्य परिणामी बलों का मान या तो शून्य रहता है या फिर नगण्य। इसलिए बिना कपूर वाली मछली इधर-उधर भागती नहीं है।

अब आप सोचेंगे कि हो न हो इस सारे प्रपंच के पीछे कपूर का ही हाथ होगा। सही फरमाया आपने। दरअसल, कपूर पानी के संपर्क में आने पर अपने इर्द-गिर्द पानी का पृष्ठ तनाव कम कर देता है।

लगा अंदाज़ा आपको कि आखिर कपूर से लदी मछली पानी की सतह पर क्यों विचरती है? जी हां, यह मछली पर लगने वाले पृष्ठ-तनाव बलों के असंतुलन के कारण होता है। चूंकि कपूर को मछली की पूंछ के बीच फंसाया जाता है, यह पानी के संपर्क में रहता है। कपूर के पानी से संपर्क की वजह से मछली की पूंछ के इर्द-गिर्द पृष्ठ-तनाव, सतह पर अन्य स्थानों की अपेक्षा, कम हो जाता है। यानी मछली की पूंछ पर लगने वाले पृष्ठ-तनाव बल का समांतर घटक मछली के सिर पर लगने वाले पृष्ठ-तनाव बल के समांतर घटक की बनिस्बत कम होगा (चित्र-7)।

अब जहां बलों का असंतुलन हो, वहां स्थिरता कैसी?

मछली को तो इधर-उधर भागना ही पड़ेगा।

वायदे के मुताबिक अब बारी आती है इस प्रयोग से उठने वाले अन्य सवालों की। अगर ऊपर दिया गया जवाब सही है तो मछली के दौड़ने की दिशा उसकी आकृति पर भी निर्भर होनी चाहिए। तरह-तरह की आकृतियां यानी मछलियां बनाकर देखिए कि क्या संबंध है इनमें। दूसरा स्वाभाविक सवाल उठता है कि क्या सिर्फ कपूर ही पानी के पृष्ठ तनाव पर इस तरह असर डालता है? नमक, शक्कर या फिटकरी लगाकर किसी को मछलियां तैराते तो नहीं देखा आजतक, पर क्या मालूम आप कुछ नया खोज निकालें।

इस बार का ज़रा सिर खुजलाने वाला सवाल पेज नं. 92 पर
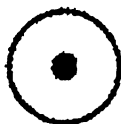
पांच जगत वाली प्रकृति

भरत पूरे

जीवविज्ञान में वर्गीकरण (Classification) की बात करते हैं तो व्यापक स्तर पर पांच जगत वाली प्रकृति हमारे सामने उभरती है। मोनेरा, प्रोटिस्टा, फफूंद, वनस्पति और जंतु जगत। क्या ज़रूरत है इतने सारे समूहों की? वनस्पति और जंतु जगत क्या इन दो समूहों से काम नहीं चल सकता और यह कैसे तय किया जाता है कि किस जीव को किस समूह में रखा जाए। ऐसे ही कुछ सवालों पर चर्चा करता है यह लेख।

लंबे समय से वैज्ञानिक जीवधारियों को दो बड़े समूहों – जंतु जगत एवं वनस्पति जगत में विभाजित (वर्गीकृत) करते आए हैं। जीवों के इस वर्गीकरण में तब तक कोई कठिनाई नहीं आती जब तक बहुत ही जाने पहचाने जीवधारियों का वर्गीकरण किया जाता है। जैसे कि नीम, पीपल, घास, गुलाब आदि को वनस्पति जगत में तथा बिल्ली, घोड़ा, केंचुआ या मक्खी को जंतु जगत में वर्गीकृत करना स्वाभाविक ही है। लेकिन वर्गीकरण में समस्या तब आन खड़ी होती है जब किसी फफूंद या स्पंज के बारे में तय करना हो। क्योंकि दोनों में वनस्पति या जंतु जगत के सहज लक्षण दिखलाई नहीं पड़ते। तो फिर इन्हें कहां रखा जाए।

फफूंद को अभी तक इसलिए वनस्पति जगत के साथ रखा जाता है कि उसमें जंतुओं की अपेक्षा पौधों के लक्षण अधिक हैं लेकिन दूसरी तरफ देखें तो फफूंद में पौधों का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण क्लोरोफिल नहीं पाया जाता। इसी प्रकार स्पंज अन्य जंतुओं के समान चल-फिर नहीं सकते, फिर भी उनमें अन्य लक्षण जंतुओं के समान होते हैं इसीलिए वे जंतु जगत में रखे जाते हैं। इस जैसी अनेक उलझनें उन सब वैज्ञानिकों के समक्ष आती रही हैं जो जीवजंतुओं को वर्गीकृत करने के प्रयास में लगे रहते हैं। इसीलिए समस्त जीवधारियों को दो की अपेक्षा
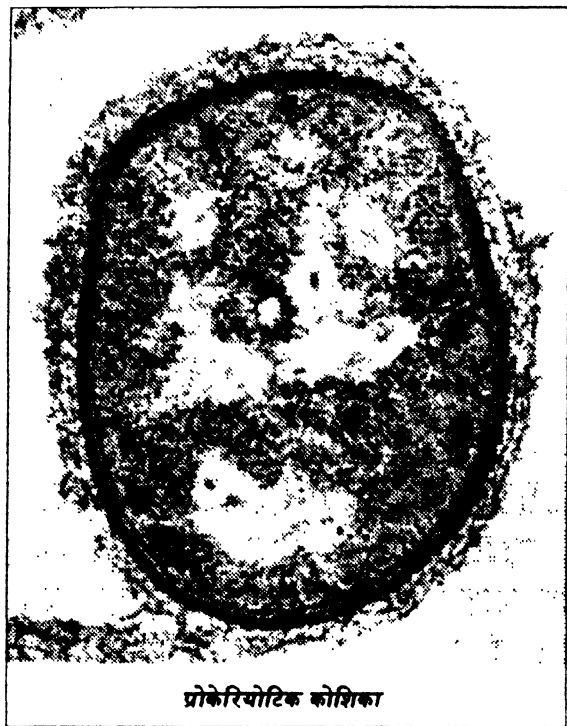
प्रोकेरियोटिक कोशिका
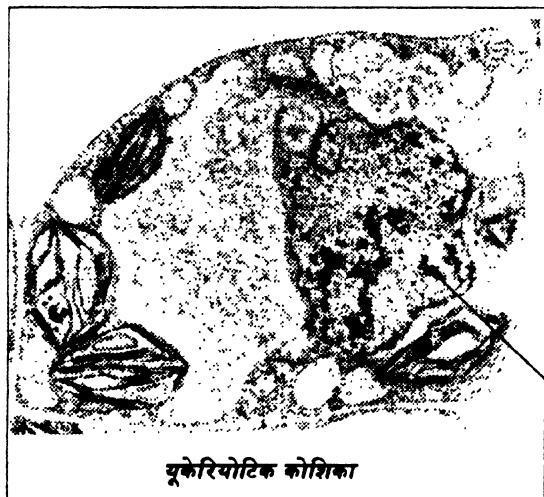
यूकेरियोटिक कोशिका

नाभिक

प्रोकेरियोटिक कोशिका (ऊपर); यूकेरियोटिक कोशिका (नीचे): कोशिका वह मूल इकाई है जिससे मिलकर जीव बनता है। संरचना के आधार पर जीवजगत में दो तरह की कोशिकाए हैं, प्रोकेरियोटिक (पूर्व नाभिकीय) और यूकेरियोटिक (पूर्ण नाभिकीय)। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है प्रोकेरियोटिक कोशिका में नाभिक नहीं होता है। वहीं यूकेरियोटिक कोशिका में नाभिक होता है जो चारों तरफ दीवार से घिरा होता है। आकार की दृष्टि से आमतौर पर यूकेरियोटिक कोशिका प्रोकेरियोटिक से बड़ी होती है।

जीवजगत में वर्गीकरण का पहला मुख्य आधार कोशिका की संरचना है। मोनेरा जगत में जो जीव आते हैं वे सारे प्रोकेरियोटिक हैं। जबकि बाकी चारों प्रोटिस्टा, फफूंद, वनस्पति और जंतु जगत में मिलने वाले जीव यूकेरियोटिक होते हैं।

प्रोटिस्टा: होते तो इसमें भी एककोशीय जीव हैं लेकिन यूकेरियोटिक। इनमें से कुछ जंतु जगत के जीवों से समानता दिखाते हैं तो कुछ फफूंद से, तो कुछ वनस्पति से। इस समूह के अंदर जो विभाजन है उसमें जंतुओं से समानता दिखाने वालों को प्रोटोज़ोआ उप-समूह, वनस्पतियों से समानता दिखाने वालों को एककोशीय शैवाल उप-समूह में में रखा जाता है।

पांच जगत के अंतर्गत विभक्त करने का प्रयास हुआ है।

सूक्ष्मदर्शी और कोशिका

विज्ञान के विकास में उपकरणों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की उपलब्धता के बाद से जीवों का कोशिका के स्तर पर अध्ययन करना संभव हो पाया। इसी के बाद मालूम पड़ा कि जीवाणु (बैक्टीरिया) एवं नीले-हरे शैवाल (ब्लू-ग्रीन एल्गी) अन्य सभी जीवधारियों से इस बात में भिन्न हैं कि

उनकी कोशिका में अलग से केंद्रक नहीं होता (प्रोकेरियोटिक कोशिका)। जबकि अन्य की कोशिकाओं में एक केंद्रक पाया जाता है जो झिल्ली से घिरा होता है (यूकेरियोटिक कोशिका)।

हालांकि पहले जब कोशिका की रचना में इस महत्वपूर्ण अंतर की जानकारी नहीं थी तब जीवाणुओं एवं नीले-हरे शैवालों को वनस्पतिजगत में ही रखा जाता था। लेकिन अब इस जानकारी के आधार पर इन दोनों को एक अलग, मोनेरा जगत के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाने लगा है।

इसी तरह फफूंद की अन्य वनस्पतियों से भिन्नताओं के कारण जीवविज्ञानी इसे वनस्पति जगत के साथ रखने पर सवाल खड़े करते रहे हैं। पहला तो यह कि फफूंद अन्य वनस्पतियों के समान प्रकाश-संश्लेषण नहीं कर पाते। यानी पोषण के लिए वे अन्य पर निर्भर हैं। दूसरा कि फफूंद जीवों की कोशिकाओं की कोशिका-भित्ति में अन्य वनस्पति कोशिकाओं की कोशिका-भित्ति के समान सेल्युलोज़ नहीं पाया जाता। और तीसरा कि अन्य बहुकोशिकीय पौधों एवं जंतुओं के समान फफूंद वास्तविक रूप से बहुकोशिकीय नहीं होते। क्योंकि फफूंद की दो कोशिकाओं के बीच विभाजित करने वाली पट्टी नहीं होती यानी कि कोशिकाओं के जीवद्रव्य आपस में एक निरन्तरता बनाए रखते हैं। इसीलिए अब आधुनिक वैज्ञानिक फफूंद जीवों को भी वनस्पति जगत में शामिल न करते हुए उन्हें एक अलग समूह फफूंद जगत के अंतर्गत रखते हैं।

इस तरह मोनेरा एवं फफूंद जगत को मान्यता देने से पुराने वर्गीकरण की दो समस्याएं तो सुलझ गईं। किन्तु एक कोशिकाधारी जीवों के वर्गीकरण को लेकर भी खासी उलझन रही है। उदाहरण के लिए प्राणीशास्त्री एक कोशिकीय फ्लेजिलाधारी जीवों जैसे यूग्लिना को प्रोटोज़ोआ संघ में सम्मिलित करते आए हैं क्योंकि वे फ्लेजिला (चाबुक समान रचना) की गति से जल में तैरकर जंतुओं के समान प्रचलन दर्शाते हैं। वहीं दूसरी ओर इन्हीं जीवों के जीवद्रव्य में अन्य वनस्पति कोशिकाओं की तरह हरा पदार्थ क्लोरोफिल होता है। इस कारण से जंतु जगत में शामिल ये जीवधारी, पौधों की विशिष्ट क्रिया प्रकाश संश्लेषण दर्शाते हैं।

इन जीवों को कैसे वर्गीकृत किया जाए? एक संभावना तो यह है कि हम कोई एक आधार लेकर (जैसे क्लोरोफिल की उपस्थिति) क्लोरोफिल-धारी एवं क्लोरोफिल-विहीन एक कोशिकीय जीवों को क्रमशः वनस्पतिजगत एवं जंतुजगत में सम्मिलित करने का निर्णय ले लें। किन्तु इतनी आसान-सी दिखाई देने वाली इस तरकीब में अनेक दूसरी समस्याएं आने लगती हैं। जैसे कुछ हरे रंग के फ्लेजिलाधारी कुछ अन्य रंगहीन फ्लेजिलाधारी जीवों से क्लोरोफिल की अनुपस्थिति-उपस्थिति के सवाल के अलावा बहुत ही निकट की संबद्धता दर्शाते हैं।

लेकिन यदि उपरोक्त आधार पर वर्गीकरण करें तो एक को वनस्पतिजगत एवं दूसरे को जंतुजगत में रखना होगा।
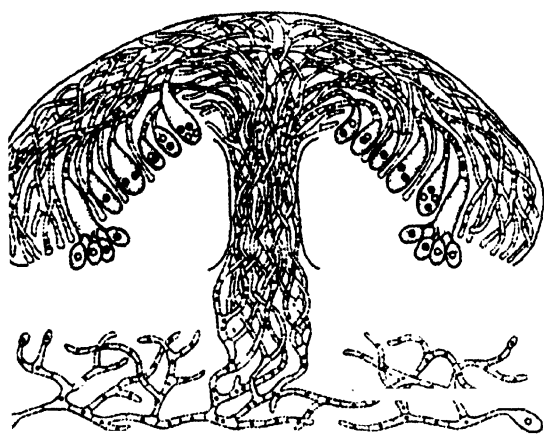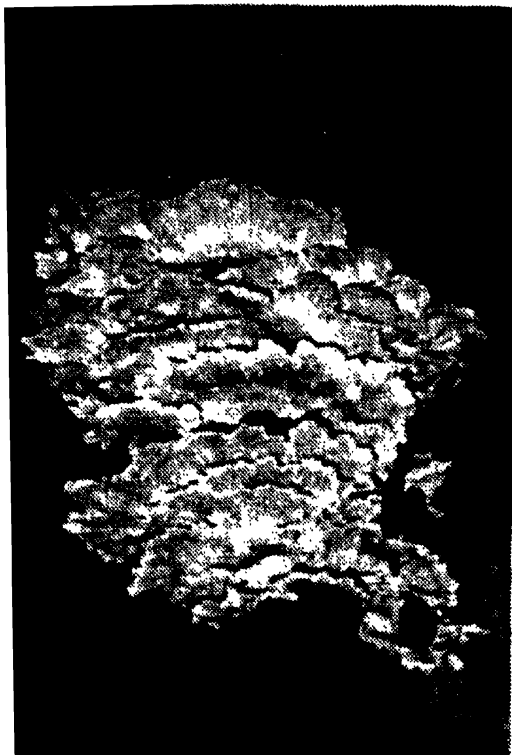
कुकरमुत्ते की खड़ी काट

फफूंद जगतः यह नाम सुनते ही जो सबसे पहली तस्वीर दिमाग में आती है वो ब्रेड, रोटी पर लगने वाले फफूंद की होती है न! इसी तरह नमीं के मौसम में यहां वहां पड़े कूड़े, सड़ी-गली लकड़ी आदि पर उगने वाला कुकुरमुत्ता (मशरूम) भी इसी परिवार का सदस्य है। फफूंद बहुकोशीय परजीवी हैं। क्लोरोफिल की अनुपस्थिति के कारण ये अपना भोजन खुद नहीं बना पाते। इनका शरीर तंतुओं जैसी रचना से बना होता है जो कि आपस में गुंथे रहते हैं। कोशिकाएं इन्हीं तंतुओं में जमी रहती हैं। इन्हीं में से कुछ तंतु दूसरे जीव के शरीर में धंस जाते हैं और आवश्यक पोषक पदार्थ खींच लेते हैं।

अतः एककोशिकीय जीवधारियों को जंतु अथवा वनस्पतिजगत के अंतर्गत सम्मिलित करने की संभावना नहीं दिखती। क्योंकि एक-कोशिकीय स्तर पर यह कहना बेमानी है कि जीव वनस्पति है या जंतु।

वनस्पति जगत: सूक्ष्मदर्शी के विकास के बाद ही सूक्ष्म जीवों को खोजा जा सका। उसके पहले वर्गीकरण की शुरुआती कोशिशों में पूरे जीवजगत को सिर्फ दो समूहों में बांटा जाता था। वनस्पति जगत और जंतु जगत।
वनस्पति जगत में आने वाले जीव बहुकोशीय हैं। इस समूह में आने वाले लगभग सभी जीव प्रकाश संश्लेषण द्वारा अपना भोजन खुद बनाते हैं। पृथ्वी की हरियाली का एक बहुत बड़ा हिस्सा इनके कारण है। ये बहुत ही विविध समूह है जिसमें शैवाल से लेकर बड़े-बड़े पेड़ पौधे आदि आते हैं। इनकी कोशिकीय संरचना यूकेरियोटिक है। यानी कि इनमें नाभिक होता है जो दीवार से घिरा रहता है।

एक-कोशिकीय जीवों के वर्गीकरण को लेकर जो यह समस्या खड़ी हुई उसके हल के लिए वैज्ञानिकों ने सभी यूकेरियोटिक (एक-कोशिकीय) जीव-धारियों को एक अलग समूह के अंतर्गत शामिल किया जिसे प्रोटिस्टा जगत कहा जाता है।

इस तरह से जो यह आधार बना इसमें प्रोकेरियोटिक कोशिकाधारी जीवों को मोनेरा जगत, फफूंद जीवों को फफूंद जगत एवं एक-कोशिकीय जीवधारियों को प्रोटिस्टा जगत में सम्मिलित करने के बाद शेष बचे बहु-कोशिकीय पौधों को वनस्पति जगत एवं जंतु जगत के अंतर्गत सम्मिलित किए जाने की प्रथा है।

पूरी प्रकृति को पांच जगत में वर्गीकृत करने का प्रस्ताव कॉरनेल विश्वविद्यालय के जीववैज्ञानिक प्रोफेसर

सूक्ष्म जीवों का संसार

उपकरणों के विकास ने विज्ञान को नई दिशा देने, शोध के नए रास्ते खोलने में बड़ी मदद की है। वर्गीकरण के पहले दो क्रम मोनेरा और प्रोटिस्टा जगत में केवल सूक्ष्म जीव ही हैं।

सूक्ष्म जीव खोजने का श्रेय जाता है एंटोन वॉन ल्यूवेनहोक को। ल्यूवेनहोक कोई वैज्ञानिक नहीं थे। वे तो लेंस बनाने का काम करते थे। उन्होंने बारिश के पानी में लेंस की सहायता से कई सूक्ष्म जीव देखे। इन्हें ल्यूवेनहोक एनीमलक्यूल (animalcule) कहा। इंग्लैंड की रॉयल सोसायटी उस दौर में एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक संस्था थी। एंटोन ने अपनी इन खोजों के बारे में 1676 से 1719 के बीच करीब 400 शोध-पत्र लिखे। लेकिन उनकी यह खोज शायद समय से पहले हुई थी। उनके इन पत्रों की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

कुल मिलाकर ल्यूवेनहोक की इन खोजों का इतना ही मतलब निकला कि लिनेअस ने 1776 में जब वर्गीकरण का अपना तरीका खोजा तो इन सूक्ष्म जीवों को एक अलग समूह केओस (Chaos) बनाकर इन्हें उसमें रखा। इस प्रजाति को नाम दिया 'केओस इनफ्यूसोरियम' (Chaos Infusorium)।

बाद के दौर में जब और संवेदनशील उपकरण खोजे गए तो इन सूक्ष्म जीवों के संसार को हम गहराई से देख पाए। फिर जाकर इनका सही तौर पर वर्गीकरण हुआ। पहले जगत यानी मोनेरा में वायरस, बैक्टीरिया आदि आते हैं। दूसरे जगत प्रोटिस्टा के बारे में कहा जाता है कि जिन्हें न पौधों के रूप में पहचाना जा सका, न जंतुओं के रूप में, उन सब जीवों को इसमें रख दिया गया है। प्रोटिस्टा के अंदर जो विभाजन है उसमें जंतु के समान दिखने वाले एककोशीय जीवों का प्रोटोज़ोआ समूह के अंतर्गत और वनस्पति के समान दिखने वाले जीवों का एककोशीय शैवाल समूह के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है।

आर. एच. विटेकर ने 1969 में दिया था। आज भी इस वर्गीकरण पद्धति को सबसे अधिक मान्यता दी जाती है।

हालांकि कोशिशें तो और भी हुई हैं जैसे कि 1974 में गॉर्डन एफ. लीडले ने विटेकर के पांच जगत वर्गीकरण की अपेक्षा एक चार जगत वर्गीकरण प्रस्तावित किया था। जिसमें प्रोटिस्टा जगत को अलग से वर्गीकृत नहीं करते हुए एक-कोशिकीय जीवधारियों को उनके विभिन्न लक्षणों एवं परस्पर संबंधों के आधार पर वनस्पति अथवा जंतुजगत के अंतर्गत सम्मिलित किया है। लेकिन तमाम बहसों के बाद इस तरह के वर्गीकरण को मान्यता नहीं मिल पायी।

* *

जंतु जगत: हिरण, हाथी, गेंडा, शेर, मछलियां, कीड़े, मकड़ी, छिपकली, बंदर, आदमी और भी न जाने कितने नाम। बस गिनते जाइए। काफी विविध समूह। आकार, संरचना, रंग आदि में भी। ये बहुकोशीय जीव हैं, जिनकी कोशिका की संरचना यूकेरियोटिक है। जो भोजन के लिए दूसरों पर निर्भर हैं। ये सीधे भोजन लेते हैं जो शरीर के अंदर जाकर रासायनिक क्रियाओं द्वारा पोषक तत्वों में टूटता है, जिन्हें कोशिकाएं सोख लेती हैं।

विटेकर का वर्गीकरण ऐसा है

मोनेरा जगत: इसमें सभी प्रकार के जीवाणु (बैक्टीरिया) एवं नीले-हरे शैवालों को सम्मिलित किया गया है। इनकी कोशिकाओं में अलग से केंद्रक नहीं होता।

प्रोटिस्टा जगत: इसमें सभी यूकेरियोटिक एक-कोशिकीय (अकोशिकीय) प्रोटोज़ोआ, पीले-हरे एवं सुनहरे-भूरे शैवाल, डायएटमस तथा फफूंद समान स्लाइम मोल्ड्स सम्मिलित किए गए हैं।

फफूंद जगत (फंजाई): इसमें सभी फफूंद सम्मिलित किए गए हैं।

वनस्पतिजगत: इसके अंतर्गत बहु-कोशिकीय हरे शैवाल, भूरे शैवाल, लाल शैवाल, ब्रायोफाइट पौधे (मॉस आदि), टेकियोफाइट पौधे (फर्न, साइकस, चीड़ एवं पुष्पधारी पौधे) सम्मिलित किए गए हैं।

जंतु जगत: इसमें सभी बहुकोशीय जंतु शामिल किए गए हैं।

(भरत पूरे – इंदौर के होलकर साइंस कॉलेज में वनस्पति शास्त्र के प्राध्यापक)

फ्यूज़ उड़े तो ....

अगर किसी भी घर में फ्यूज़ उड़ जाए तो स्विच बोर्ड पर लगे हुए फ्यूज़ (कट आऊट) निकालकर देखने पड़ते हैं। आमतौर पर प्रत्येक घर में मेन स्विच बोर्ड पर कई सारे फ्यूज़ लगे होते हैं। ऐसे में फ्यूज़ उड़ने पर होता यह है कि सबको बारी-बारी से निकालो और जांचो।

एक छोटा-सा परिपथ हरेक कट आऊट (फ्यूज़) के साथ समांतर क्रम में लगा देने से इस तकलीफ से बचा जा सकता है।

R = 560 ओम, 0.25 वॉट।
L. E. D. = लाल रंग की एक बड़ी वाली उपयुक्त रहेगी।
C = 0.022 (K. P. F.) 400 वोल्ट।

जब तक फ्यूज़ सही रहेगा एल. ई. डी. नहीं जलेगा क्योंकि इस परिपथ में से पर्याप्त विद्युत धारा नहीं बहेगी। परन्तु फ्यूज़ उड़ते ही एल. ई. डी. जलने लगेगा। जिस भी कट आऊट के साथ जुड़ा हुआ एल. ई. डी. जल रहा हो बस उसी को निकालकर सुधारने की ज़रूरत है।
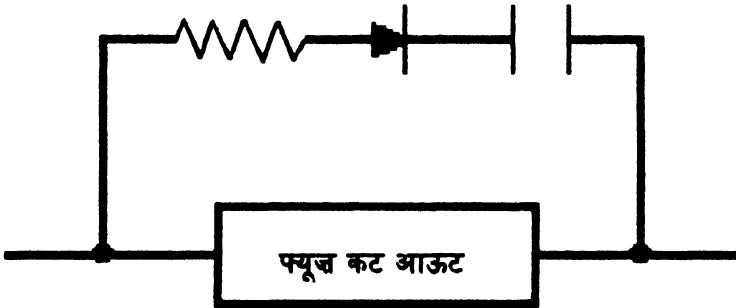
● मोहम्मद रज़ाक, होशंगाबाद

वो तरीका

• चार्ल्स डिकन्स
रूपान्तरण : स्मिता अग्रवाल

पुस्तक अंश

"पार्वती", मामा कहते हैं, "लड़के के साथ सख्ती बरतो! अन्नु, अन्नु मत करो! ये क्या बचपना है? या तो इसे अपना पाठ याद है, या फिर नहीं है।"

"भूल गया है" मां कहती है।

"इसका मतलब है पार्वती", मामा तुरन्त कहते हैं, "कि उसे किताब वापस दो और देखो कि याद करे।"

"हां, हां भैया", मां कहती है, "यही करने जा रही हूं। चल अन्नु फिर से कोशिश कर, और अब बेवकूफी मत करना।"

कई दफा मेरे बोर्डिंग स्कूल जाने की बात होती थी। शुरूआत मामा से ही होती थी और मां के पास तो सिवाय हामी भरने के कोई चारा न होता था। लेकिन कभी कुछ तय नहीं हुआ। और इस दौरान मेरी पढ़ाई घर पर ही चलती रही।

क्या मैं कभी उस पढ़ाई को भूल पाऊंगा?

मेरी पढ़ाई का घण्टा वैसे तो मेरी मां की देखरेख में बीतता था पर छत्रछाया तो मामा की ही रहती थी, जो हरदम मौजूद रहते थे और उनके लिए यह अच्छा मौका होता था मेरी मां को पाठ पढ़ाने का कि सख्ती रखना क्यों ज़रूरी है। जब मैं और मां अकेले होते थे तब तो मुझे पढ़ने में कोई दिक्कत नहीं आती थी और मन भी लगता था। मुझे हल्का-हल्का याद है उनकी गोद में बैठकर अक्षर सीखना। आज भी जब मैं मोटे काले अक्षर देखता हूं तो 'ख' और 'छ' की आकृतियां मुझे तब की ही तरह अजीब घुमावदार और 'र' और 'त' की आकृतियां आसान, खुश-मिजाज़ नज़र आती हैं। उकताहट और अनमनेपन की कोई याद उनके साथ नहीं जुड़ी है बल्कि मगरमच्छ वाले पाठ तक तो मैं फूलों भरे रास्ते पर चलता हुआ पहुंच गया था। और सारे रास्ते मां की प्यार भरी आवाज़ और खुशनुमा तरीका मुझे उत्साहित करता रहा था। पर उसके बाद के पाठ मुझे यमदूत की तरह याद पड़ते हैं। मेरी शिक्षा के ये घण्टे बहुत लम्बे, बहुत ज़्यादा और बहुत मुश्किल होते थे। उनमें से कुछ तो पूरी तरह सिर के ऊपर से गुज़र जाते थे। उस दौरान मैं उतना ही बदहवास रहता था जितना कि मुझे लगता था कि मेरी मां भी रहती थीं।

मैं कोशिश करता हूं याद करने की कि वह समय कैसा होता था, और तब की एक सुबह को वापस लाने कीः सवेरे का नाश्ता करने के बाद, मैं बैठक में प्रवेश करता हूं--किताबें, कॉपी और स्लेट हाथ में लिये। मेरी मां मेज़ पर मेरे लिए

तैयार बैठी है, पर शायद उससे ज़्यादा तैयार हैं मेरे मामा, खिड़की के पास अपनी आराम-कुर्सी में (हालांकि उनकी आंखें चश्मे के भीतर से अखबार को गौर से पढ़ती-सी लगती हैं)। उनके एक नज़र भरकर देखने से ही मुझे लगता जिस पाठ को मैंने जान लगाकर अपने भेजे में घुसाने की कोशिश की थी, वो सब फिसलता जा रहा है। कहां जा रहा है, मुझे मालूम नहीं। वैसे याद किए शब्द जाते भी कहां होंगे?

मैं मां को अपनी किताब पकड़ाता हूं। शायद यह व्याकरण की है, या फिर इतिहास की, या भूगोल की। उनके हाथ में देते हुए मैं एक आखिरी डूबती हुई नज़र पन्ने पर फिरा लेता हूं और जब तक याद ताज़ा है ऊंची आवाज़ में फर्राटे से उगलने लगता हूं। एक शब्द पर अटकता हूं। मामा सिर उठा कर ऊपर देखते हैं। एक और शब्द पर अटकता हूं। मामा के होंठ कुछ भिंचते हैं। मेरे कान लाल हो जाते हैं, मैं आधा दर्ज़न शब्दों पर लड़खड़ा कर रुक जाता हूं। मुझे लगता है कि अगर मां दिखा पाती तो मुझे किताब का पन्ना दिखा देतीं, पर उनकी हिम्मत नहीं होती और वे धीरे से कहती है,

"अन्नु, ए अन्नु।"[1]

"पार्वती", मामा कहते हैं, "लड़के के साथ सख्ती बरतो! अन्नु, अन्नु मत करो! ये क्या बचपना है? या तो इसे अपना पाठ याद है, या फिर नहीं है।"

"भूल गया है" मां कहती है।

"इसका मतलब है पार्वती," मामा तुरन्त कहते हैं", कि उसे किताब वापस दो और देखो कि याद करे।"

"हां, हां भैया," मां कहती है, "यही करने जा रही हूं। चल अन्नु फिर से कोशिश कर, और अब बेवकूफी मत करना।"

मैं आदेश के पहले हिस्से का तो पालन करता हूं, एक दफा और कोशिश करके, लेकिन दूसरे हिस्से में मैं उतना कामयाब नहीं हो पाता, क्योंकि मैं वाकई बहुत बेवकूफ हूं। मैं पाठ के उस पुराने बिन्दु पर पहुंचने के पहले ही लड़खड़ा जाता हूं, जहां पहले मुझे कोई दिक्कत नहीं थी, और ठहर कर ध्यान करता हूं। पर पाठ के बारे में मैं सोच ही नहीं पाता।

मामा के चश्मे के फ्रेम के बारे में सोचने लगता हूं, या उनके अखबार के पन्ने में कितने शब्द छपे होंगे, या ऐसी ही किसी बेसिर-पैर चीज़ के बारे में। मामा धैर्य खो बैठते है जिसका कि मैं कबसे इंतज़ार कर रहा हूं। मेरी मां हार मानकर किताब बंदकर देती है, जैसे कि अब इस पाठ को और नहीं झेल पाएगी।

लेकिन पूरे न हो सकने वाले पाठों की सूची बढ़ती ही जाती है, और साथ ही साथ मेरा बौड़मपना भी। मैं बहुत हताश हो जाता हूं। ऐसा लगता है कि मैं एक दलदल में धंसता जा रहा हूं लेकिन वहां से निकलने का ख्याल छोड़ सिर्फ अपने को किस्मत के हवाले कर देता हूं। कातरता से मैं और मां एक दूसरे को देखते हैं। जैसे-जैसे मैं एक-पर-एक गलतियां करता जाता हूं, वो वाकई उदासी भरा दृश्य होता है। पर इन पाठों के दौरान बात सबसे ज़्यादा तब बिगड़ती है जब मेरी मां मुझे होठों के इशारे से याद दिलाने की कोशिश करती है, और मामाजी मानो इसी क्षण के इंतज़ार में बैठे थे, गहरी, चेतावनी भरी आवाज़ में कहते हैं:

"पार्वती!"

मेरी मां चौकती है, लाल हो जाती है, और हल्के से मुस्कराती है। मामा कुर्सी से बाहर आ कर किताब ले लेते हैं, या तो मुझ पर फेंक के मारते हैं या मेरा कान उमेठते हैं, और कंधों से पकड़ कर मुझे कमरे से बाहर कर देते हैं।

पाठ पूरे हो जाएं तो भी क्या! अभी असली चीज़ तो बाकी है – वो पहाड़नुमा सवाल। इसे मेरे लिए ही ईजाद किया गया है। मामा की आवाज़ आती है, "अगर मैं बिस्कुट वाले की दुकान में जाता हूं और पांच हजार बिस्कुट खरीदता हूं – एक बिस्कुट की कीमत दो रुपए छः आना है, तो कुल कितना पैसा हुआ?" मामा की आंखों की चमक अब भी मुझे साफ नज़र आ रही है। मैं इन बिस्कुटों में उलझकर बगैर नतीजे तक पहुंचे ही दोपहर से रात कर देता हूं। भभूतिया बाबा की तरह स्लेट की गर्द मेरी खाल

के पोरों में बैठ जाती है, एक रोटी खाने में मुझे मिलती है, और सारी शाम मुझे नकारे की तरह रखा जाता है।

आज इतनी दूरी से जब मैं उन दिनों की ओर देखता हूं तो लगता है कि अगर मेरी अभागी पढ़ाई ने यह दिशा न ली होती, अगर मामा की छत्र-छाया मुझ पर न होती तो शायद मैं बहुत अच्छा कर सकता था।

लेकिन मामा का असर मुझ पर ऐसा होता था जैसे चिड़िया के बच्चे पर सांप का। कभी-कभार मेरी सुबह की पढ़ाई गुज़ारे लायक हो भी जाती, तब भी मुझे छूट नहीं मिलती। असल में मामा मुझे खाली देखना सहन नहीं कर सकते थे। अगर मैं ज़रा-सा भी ज़ाहिर कर देता कि मैं इस वक्त कोई काम नहीं कर रहा हूं तो वे फौरन मेरी मां का ध्यान इस ओर दिलवाते और कहते, "पार्वती काम जैसी कोई चीज़ नहीं है, छोरे को लगा के रख" इसी के साथ धम्म से मेरे ऊपर काम का एक और दिल्द्दर आ गिरता। जहां तक मेरे उम्र के और बच्चों से मिलने-जुलने का सवाल था इसका मौका मुझे शायद ही कभी मिलता था, मामा की समझ में तो सभी बच्चे सांपों के झुण्ड की तरह होते हैं और एक दूसरे को दूषित करते हैं।

छह महीनों से अधिक समय तक चले इस बर्ताव का नतीजा यह हुआ कि मैं उदास, अनमना और ज़िद्दी हो गया। मां से हर रोज़ दूर रखे जाने और उनसे बढ़ते अलगाव ने मुझ पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं डाला।

मुझे विश्वास है कि सिर्फ स्थिति ने मुझे होश-हवास खोने से बचाए रखा। वह यह थी: मेरे पिताजी किताबों का एक छोटा-सा संग्रह छोड़ गए थे जो मेरे कमरे से लगे हुए छोटे कमरे में था। उस पर मेरी पहुंच थी और किसी का कोई दखल नहीं था। उस प्यारे छोटे-से कमरे से रॉबिन्सन क्रूसो, अलादीन, अलीबाबा, हामिद और मोगली जैसे शानदार सुनहरे दोस्त निकल कर आते थे, मेरा साथ देने के लिए। वे मेरी कल्पना को ज़िन्दा रखते थे, और मेरी उम्मीद को कि उस समय के बाद भी मेरी ज़िंदगी में कुछ था। मुझे हैरत होती है कि कैसे उस नाक रगड़ाई, भारी भरकम विषयों की पढ़ाई और हमेशा की गलतियों के बीच मैं उन किताबों को पढ़ने का वक्त निकाल पाता था। मुझे आश्चर्य होता है कि अपनी छोटी-छोटी मुश्किलों (जो उस समय मेरे लिए बहुत बड़ी थीं) के दौरान भी मैं खुद को उन कहानियों के अच्छे पात्रों की जगह रखकर और मामा को सभी ज़ालिम पात्रों

का जामा पहना कर कैसे सांत्वना पाता था।

मैं एक हफ्ते तक प्रेमचंद की 'ईदगाह' का हामिद बना रहा हूं। पूरे महीने तक मैंने अलीबाबा को अपने में उतार कर रखा है। अलमारी के खानों में सजी सिंदबाद की समुद्री यात्राओं पर तो मैं लालच से टूट पड़ता था, और दिनों दिनों तक सरकण्डे के तीर कमान और मेज़पोश का परचम उठाए इस तरह घूमा करता था मानों हर समय मेरी जान दांव पर लगी हुई हो और वहशी किसी भी समय आकर धावा बोल देंगे। यह कप्तान व्याकरण की भूल के कारण कान उमेठे जाने पर भी अपना बड़प्पन नहीं खोता था। कप्तान तो हीरो था – दुनिया भर की भाषाओं के व्याकरण से ऊपर।

यही मेरे लिए एक अकेला रास्ता था जो मुझे लगातार राहत देता रहता था। जब मैं सोचता हूं तो मेरे मन में हमेशा तस्वीर बनती है गर्मियों की एक शाम की: लड़के बाहर मंदिर के पेड़ के नीचे खेल रहे हैं, मैं अपने पलंग पर बैठा हूं और ऐसे पढ़ रहा हूं जैसे मेरी जान उस पर टिकी है। पड़ोस का हर खलिहान, मंदिर का हर पत्थर, उसके आसपास की हर ज़मीन मेरे मन में उन किताबों से जुड़ी थी और किसी-न-किसी कहानी का कोई न कोई वाक्या वहां घटा था। मैंने देखा है सिंदबाद को मंदिर की चोटी पर चढ़े, दूर समुद्र को देखते हुए, मैंने देखा है हामिद को बाज़ार के हलकू राम लुहार से चिमटा खरीदते हुए, मैंने देखा है मरजीना को रात के अंधेरे में आकर हमारे घर के दरवाज़े पर निशान लगाते हुए। खैर वापस आता हूं मैं अपने इतिहास के उसी समय पर जहां तक हम अभी पहुंचे हैं।

एक सुबह जब अपनी किताबें लिए मैं बैठक में पहुंचा, तो मां चिन्तित नज़र आ रही थी और मामा कड़क भाव से एक हन्टर के सिरे पर कुछ लपेट रहे थे – चिकना मज़बूत हन्टर! मुझे देखते ही उन्होंने लपेटना छोड़ कर हन्टर को एक दफा हवा में सरसराया।

"मैं बता रहा हूं पार्वती" वे बोले, "मैं खुद कई दफा मार खा चुका हूं।"

"हो सकता है भाई साब", मेरी मां रुक-रुक कर दबी आवाज़ में बोली, "पर क्या आप सोचते हो इससे आपका कोई फायदा हुआ?"

"क्या इससे मुझे कुछ नुकसान हुआ?" मामा ने गम्भीरता

से पूछा।

"भाई साब......." कहते कहते मां और कुछ नहीं बोल सकी।

मुझे सिहरन के साथ महसूस हुआ कि शायद इस वार्तालाप के साथ मेरा कुछ संबंध है और मैंने मामा से नज़र मिलाने की कोशिश की।

"आज , अन्नु" वो बोले, "तुझे हमेशा से ज़्यादा होशियार रहना है।" उन्होंने हन्टर को एक बार और फटकारा और अपनी तैयारी पूरी कर लेने के बाद, पास ही फर्श पर रख दिया। एक पैनी नज़र मुझ पर डालने के बाद उन्होंने अपना अखबार उठा लिया।

मेरी होशियारी को उभारने के लिए यह अच्छी शुरूआत थी। मैंने अपने पाठ के शब्दों को दिमाग से फिसलते हुए पाया, एक-एक करके, या लाइन-दर-लाइन नहीं बल्कि पेज-दर-पेज मैंने कोशिश की उन्हें थामने की, पर उनके नीचे तो जैसे पहिए लगाए गए थे और इतनी सरलता से वे मुझसे दूर होते जा रहे थे कि मैं उनको रोक ही नहीं पा रहा था।

शुरूआत खराब हुई और आगे और भी बुरा होता गया। मैं तो आया था यह सोच कर कि आज हो न हो अच्छा करके ही दिखाऊंगा। मैं इस भ्रम में था कि मैंने बहुत अच्छी तैयारी की है। पर यह गलत साबित हुआ। किताब-पर-किताब मेरी हार के ढेर पर गिरती गई, और मामा पूरे वक्त हम पर कड़ी नज़र रखे हुए थे। जब आखिरकार हम पांच हज़ार बिस्कुटों पर आए (आज मामा ने बिस्कुट को बदल कर हन्टर कर दिया था) तो मेरी मां फूट कर रो पड़ी।

"पार्वती!" मामा ने चेतावनी भरी आवाज़ में कहा।

"नहीं, नहीं मैं ठीक हूं," मां बोली।

मैंने मामा को देखा, होंठों को हल्का-सा भींचकर उठ खड़े होते हुए। हन्टर हाथ में था। बोले, "पार्वती तुम से उम्मीद नहीं है कि तुम्हारे बेटे ने आज तुम्हें जो चिन्ता और तकलीफ दी है उसे तुम सख्ती से सहन कर पाओगी। ये तुम्हारे बस का नहीं है। हां, पहले से तुम बहुत बदली हो, बहुत मज़बूत हुई हो, पर ये तुम्हारे लिए ज़्यादा ही हो जाएगा। अन्नु, तू और मैं ऊपर चलते हैं।" जैसे ही वो मुझे कमरे से बाहर ले जाने लगे मां भागकर आई। मामा बोले, "पार्वती तुझे बिल्कुल अक्ल नहीं है क्या?" मां ने कानों पर हाथ रख लिए और मुझे उसके रोने की आवाज़ सुनाई पड़ी।

वो मुझे सीढ़ियों से ऊपर अपने कमरे की तरफ धीमी

गति से और पूरी गम्भीरता से ले जा रहे थे – मुझे यकीन है कि मुजरिम को उसके अंजाम तक पहुंचाने के भाव से वे खुश थे – और ऊपर पहुंचते ही अचानक उन्होंने मेरा सिर मरोड़कर अपनी बांह के नीचे फंसा लिया।

"मामा, मामा", मैं चिल्ला पड़ा, "मुझे मत मारो! मैंने याद करने की कोशिश की है, पर जब आप वहां होते हो तो मैं नहीं कर पाता, सच में नहीं कर पाता!"

"नहीं कर पाते, अन्नु?" वो बोले। "चलो देखते हैं।"

उन्होंने मेरा सिर जकड़ रखा था, पर किसी तरह मैं खुद को मरोड़कर उनसे छूट गया एक क्षण के लिए मैंने उनको रोका, यह कहते हुए कि वो मुझे ना मारें। एक क्षण भर ही मैं उन्हें रोक पाया, क्योंकि अगले ही क्षण उन्होंने मुझे बुरी तरह चपेटा, और उसी क्षण मैंने उनका वो हाथ जिससे उन्होंने मुझे पकड़ रखा था अपने दांतों के बीच पकड़ लिया और पूरे ज़ोर से काट लिया। अब भी उस बात को सोचकर मेरे दांत भिंच जाते हैं।

अब उन्होंने मुझे पीटा, और ऐसा पीटा कि जैसे पीट–पीट कर मेरी जान ही निकाल देंगे। जो शोर हम कर रहे थे उस शोर से भी ज़्यादा तेज़ आवाज़ें मुझे नीचे से आ रही थीं। मुझे ऊपर दौड़ने की आवाज़ सुनाई पड़ी – मां चीख रही थी – और साथ में बसंती भी जो हमारे घर पर काम करती थी।

थोड़ी देर बाद मामा जा चुके थे, और बाहर से दरवाज़े पर ताला लगा दिया गया था। मैं हरारत में, तमतमाया हुआ, सूजा हुआ, अपने मरियल तरीके से उफनता हुआ ज़मीन पर पड़ा था।

चार्ल्स डिकन्स के उपन्यास **'डेविड कॉपरफील्ड'** से एक अंश। चार्ल्स डिकन्स का जन्म इंग्लैंड के पोर्टसमाउथ में हुआ। उपन्यासकार होने से पहले वे इंग्लैंड की संसद में रिपोर्टर के रूप में काम करते थे। प्रसिद्ध उपन्यास **'डेविड कॉपरफील्ड'** पहली बार 1850 में प्रकाशित हुआ था। इसे उनका आत्मकथा-नुमा उपन्यास माना जाता है। डिकन्स ने इस उपन्यास और उसके पात्र डेविड के बारे में लिखा था, "अपनी सारी किताबों में से सबसे ज़्यादा मैं इसे पसंद करता हूं। जिस तरह सबसे प्यारा बच्चा माता-पिता के दिल में रहता है, एक प्यारा बच्चा मेरे भी दिल में है। और उसका नाम है डेविड कॉपरफील्ड।"

• स्मिता अग्रवाल - जयपुर, राजस्थान में लोक जुम्बिश परियोजना में कार्यरत।

शीर्षक: चाय की प्याली में पहेली (मूल: रीड्ल्ज़ इन योर टी कप), **उपशीर्षक:** दैनिक जीवन की विज्ञान पहेलियां, **मूल लेखक:** पार्थ घोष एवं दीपंकर होम, **अनुवादक:** अरविंद गुप्ता, **प्रकाशक:** नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली 110016, **मूल्य:** 27.00, **पृष्ठ संख्या:** 105

चाय की चुस्की और विज्ञान

अमिताभ मुखर्जी

- *आग पर चढ़ाई हुई पानी की केतली गुनगुनाती क्यों है?*
- *सूखे कागज़ के मुकाबले में गीले कागज़ को फाड़ना आसान क्यों होता है?*
- *साबुन किस प्रकार कपों का मैल साफ करता है?*
- *उबलता हुआ दूध उफनकर गिर जाता है जबकि पानी नहीं गिरता। क्यों?*
- *तारे क्यों झिलमिलाते हैं?*

ऐसे बहुत से सवाल हैं जो कभी-न-कभी हम सबके दिमाग में आए होंगे पर आमतौर पर हम इन सवालों को महत्त्व नहीं देते। हम मान लेते हैं कि इन 'आसान' सवालों के जवाब भी आसान होंगे। अत: इन पर गम्भीरता से सोचने की ज़रूरत नहीं है।

परन्तु दैनिक जीवन में उठने वाले ये सवाल प्राय: उतने सीधे नहीं होते जितने वे लगते हैं। अक्सर इनमें कोई चौंका देने वाली बात छुपी होती है। ऐसी ही पहेलियों को आम पाठकों के सामने लाने के उद्देश्य से प्रेरित होकर पार्थ घोष और दीपंकर होम ने 'रिड्ल्ज़

इन योर टी कप' पुस्तक लिखी थी। पत्रिकाओं में छपने वाले नियमित स्तंभों का यह संकलन 1989 में छपा था। छः साल बाद आज इसका हिन्दी अनुवाद उपलब्ध हुआ है। इसके लिए हमें सराहना होगा नेशनल बुक ट्रस्ट को और अनुवादक अरविन्द गुप्ता को।

इस किताब में लगभग एक सौ पहेलियां हैं। दोनों लेखक भौतिकशास्त्री हैं, अतः सवाल मूलतः भौतिकी के हैं। लेखकों ने उन्हें आठ खंडों में बांटा है। उनका कहना है "इसका आधार है कि समस्या हमें कहां नज़र आयी – रसोईघर में, या उसके आसपास, या फिर बाहर प्रकृति में, या खेल के मैदान में, कोई फिल्म देखते, या फिर कोई उपन्यास पढ़ते"। आठवें खंड में कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो उनके अनुसार अभी भी अनुत्तरित हैं। किताब के अंत में पहले सात खंडों के प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं।
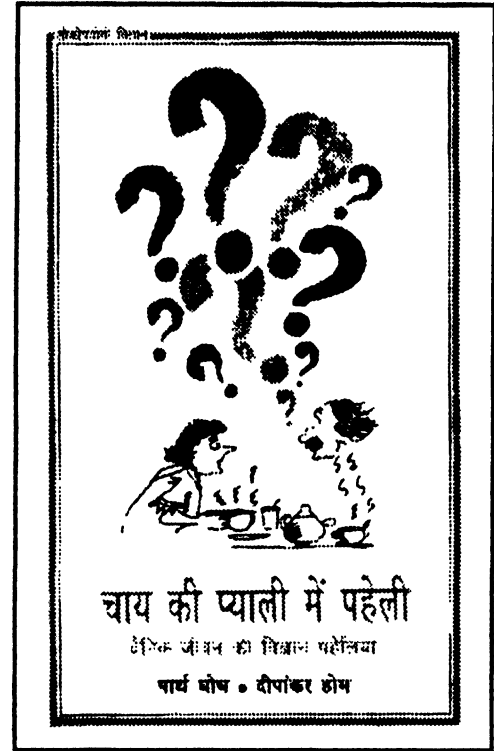
सवालों में विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों का उपयोग नहीं किया गया है। कुछ सवालों के अंतर्गत विख्यात वैज्ञानिकों
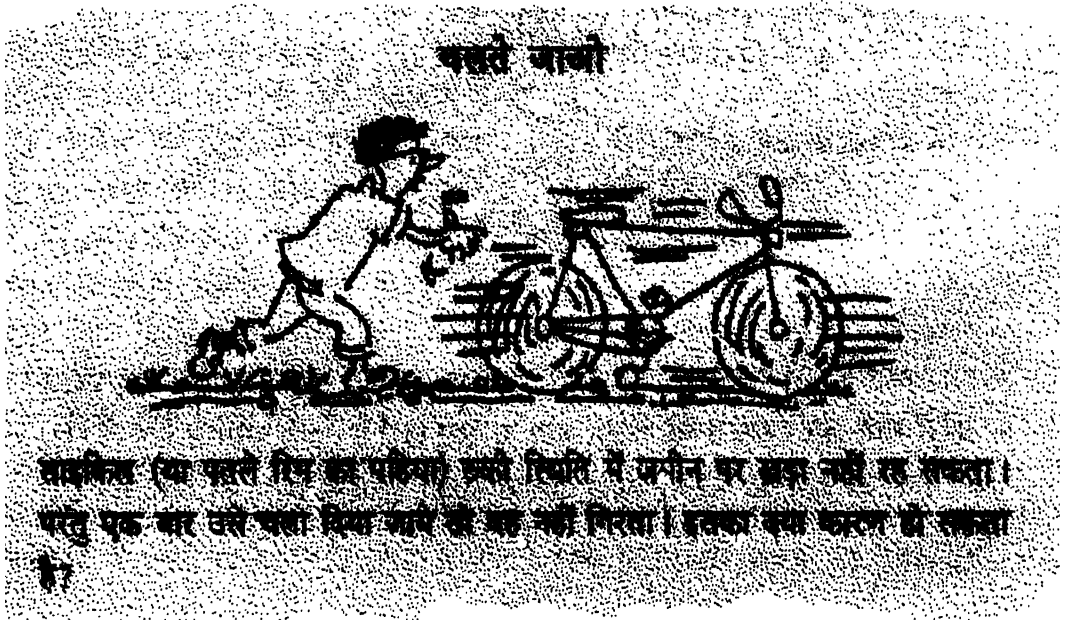
के बारे में छोटे-छोटे किस्से हैं, तो कुछ में प्रसिद्ध फिल्मों का ज़िक्र है। हर सवाल के साथ कार्टूनशैली में एक चित्र है। सुपर्ण चौधरी के बनाए हुए ये चित्र स्पष्टीकरण के साथ मनोरंजन भी करते हैं। अरविन्द गुप्ता ने अनुवाद के लिए सरल बोलचाल की हिन्दी अपनायी है। इससे मूल अंग्रेज़ी में जो रोज़मर्रा का ज़ायका है, वह बना हुआ है। इस तरह यह किताब विज्ञान को दैनिक जीवन से जोड़ने का एक सार्थक प्रयास है। किशोर तथा युवा पाठकों की जिज्ञासाएं जगाने में यह सक्षम होगी, इसमें कोई संदेह नहीं।

उत्तरों में लेखकों को सही और सरल के बीच संतुलन बनाए रखना पड़ा है। पारिभाषिक शब्दों का उपयोग प्रश्नों में नहीं किया है पर उत्तरों में करना पड़ा है। इससे हिन्दी में कहीं-कहीं दिक्कत आई है। जैसे एक ही राशि को पृष्ठ -76 पर कोणीय आवेग और पृष्ठ -78 पर कोणीय संवेग कहा गया है। कहीं-कहीं अति-सरलीकरण का आभास है। उदाहरण स्वरूप, चलाई गई साइकिल की स्थिरता का कारण कोणीय संवेग का संरक्षण बताया जो कुछ अधूरा-सा लगता है (इस सवाल का जवाब संदर्भ के तीसरे अंक में विस्तार से दिया गया है। देखिए 'सीधे-सवाल, टेढ़े-जवाब', संदर्भ, अंक-3)। फिर भी कुल मिलाकर दिए गए उत्तर इस पुस्तक के उपयोगी अंश हैं, जो पाठक

को आगे सोचने पर मजबूर करेंगे।

अंत में, प्रशंसा के साथ-साथ एक छोटा-सा ऐतराज़। किताब में कुछ वैज्ञानिकों या व्यक्तियों के नामों के हिन्दी रूप गलत दिए गए हैं। मसलन श्रोडिंगर और आइनस्टाइन की जगह श्रोडिंजर और आईंस्टीन लिखना फिर भी चल सकता है, क्योंकि ये नाम विदेशी हैं। पर जब भारत के नोबेल पुरस्कार विजेता रामन का नाम रमन लिखा जाता है तो अजीब लगता है। यहां तक कि लेखक दीपंकर होम का नाम भी दीपांकर बन गया है। आशा है कि अगले संस्करण मे ये गलतियां सुधार ली जाएंगी।

(अमिताभ मुखर्जी – दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में प्राध्यापक।)
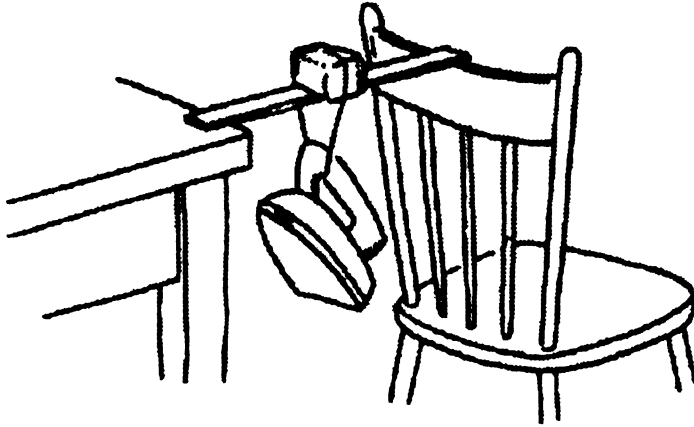
ज़रा सिर तो खुजलाइए

गर्मियां तो आ ही रही हैं, बर्फ भी मिलने लगी है। बस ज़रा इस प्रयोग को कर देखिए। करना यह है कि एक स्केल या लकड़ी, लोहे की पट्टी को हवा में दो आधारों पर लटका दीजिए। एक बर्फ का टुकड़ा उस पर रख दीजिए। अब एक लोहे का पतला-सा तार लेकर जैसे इस चित्र में कपड़े की प्रेस लटकी है वैसे ही कोई और भार लटका दीजिए। देखिए क्या होता है?

अब आपको यह बताने के लिए सर खुजाना है कि ऐसा क्यों हो रहा है कि तार बर्फ को काटते हुए नीचे जा रहा है। इस प्रक्रिया में तार के नीचे की बर्फ तो पिघल रही है लेकिन ऊपर की बर्फ जमती जा रहा ही। मानो पिघली ही न हो।

जवाब हमें इस पते पर लिख भेजिए – संदर्भ, द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद 461 001. सही जवाबों को अगले अंक में प्रकाशित करेंगे।

फ्यूज़ बल्ब; कुछ विज्ञान, कुछ खेल

फ्यूज़ बिजली के बल्व में रंगबिरंगा पानी डालकर उनसे घर को सजाया हुआ तो आपने कई बार देखा होगा। लेकिन ऐसे फ्यूज़ बल्व से हम कुछ प्रयोग कर सकते हैं और इनसे विज्ञान के कुछ सिद्धांतों को समझ सकते हैं।

इस तरह के प्रयोगों के लिए ज़रूरत है सिर्फ फ्यूज़ बल्व की। बल्व को सावधानी से फोड़कर अंदर की कांच की नली वगैरह निकाल देते हैं। अब हमारे पास बचता है सिर्फ खोखला बल्व।

पहला प्रयोग: खोखले बल्ब में कुछ पानी भर दीजिए। अब यह एक लेंस के समान काम करेगा। दोपहर के समय जब सूर्य काफी ऊपर चढ़ जाता है तब इस बनाए हुए लेंस को सफेद कागज़ के ऊपर पकड़कर बल्ब को इस तरह ऊपर या नीचे लाते हुए कोशिश कीजिए, कि इस बल्बनुमा लेंस से होकर जाने वाली प्रकाश की किरणें एक बिन्दु के रूप में कागज़ पर दिखाई दें।

जैसे ही ऐसी स्थिति मिले आप स्केल की मदद से बल्ब के निचले सिरे से (जहां पानी है) कागज़ की दूरी को नापिए। यह दूरी इस लेंस की फोकल दूरी है। यानी लेंस से इस दूरी पर रखी कोई भी चीज़ इस लेंस से साफ-साफ दिखाई देगी।

दूसरा प्रयोग: बल्ब की कागज़ पर जो छाया बनती है उसकी बहिरेखा (Out line) प्राप्त कीजिए। इस वृत की त्रिज्या मालूम करने के लिए बहिरेखा पर दो ज्या (Chord) अंकित कीजिए। दोनों ज्या के मध्य बिन्दुओं पर लंब रेखाएं खींचिए। जहां ये दोनों रेखाएं काटती है वह वृत का केन्द्र है। अब वृत की त्रिज्या नापिए। यह गोलाकार बल्ब की भी त्रिज्या भी है। पानी के द्वारा बने इस लेंस का एक पृष्ठ समतल है तो एक पृष्ठ वक्र है। वक्र पृष्ठ त्रिज्या r तय की गई है।

अब ($\mu - 1/\mu$) सूत्र की सहायता से पानी का भुजायनांक (Refractive Index) मालूम किया जा सकता है।

एक खेल भी: फ्यूज़ बल्ब में चित्र में दिखाए अनुसार गीली मिट्टी भर दीजिए। मिट्टी गीली करते समय इस बात का ध्यान ज़रूर रखिए कि मिट्टी में पानी काफी कम मिलाना है। अब लकड़ी की सींक पर कागज़ का एक छोटा-सा मुखौटा चिपकाकर इस सींक को बल्ब के अंदर भरी गीली मिट्टी में गड़ा दीजिए।

यह बन गई एक गुड़िया। इस गुड़िया को एक ओर सुलाकर छोड़ देने पर गुड़िया तुरंत उठ खड़ी होती है। एक बार फिर इसे दोहराकर देखिए। फिर से गुड़िया उठ खड़ी होगी। सोचिए तो ऐसा क्यों हो रहा है। क्या कोई सिद्धांत भी इसके पीछे काम कर रहा है?

● डॉ. पुरुषोत्तम खांडेकर, नागपुर

एकलव्य के प्रकाशन

चकमक - मासिक बाल विज्ञान पत्रिका, वार्षिक सदस्यता शुल्क 50 रुपए, डाकखर्च मुफ्त (पुराने सजिल्द अंक उपलब्ध)
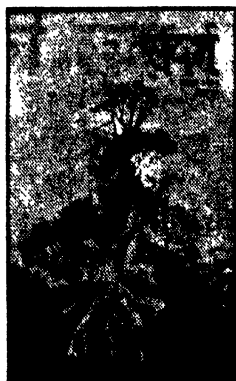
संदर्भ - शैक्षिक विषयों पर केंद्रित शिक्षकों की द्वैमासिक पत्रिका, वार्षिक सदस्यता शुल्क 35 रुपए (6 अंक)
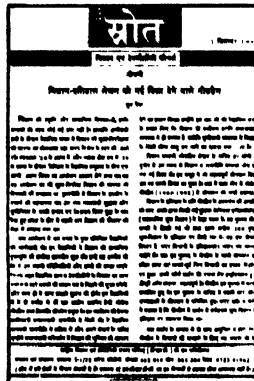
स्रोत - विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर सेवा, मासिक पत्रिका के रूप में भी उपलब्ध, वार्षिक सदस्यता शुल्क 100 रुपए (संस्थाओं के लिए 200 रुपए)
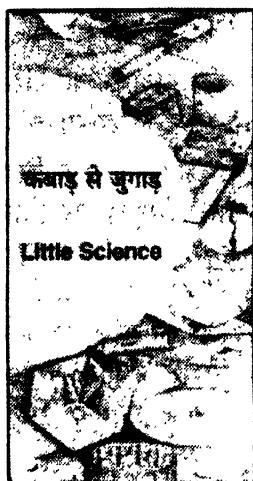
कबाड़ से जुगाड़ - आसपास बिखरे पड़े बेकार सामान से विज्ञान के प्रयोग करने और समझने की पुस्तिका, पृष्ठ - 68, मूल्य 10.00 रुपए, डाक से 11.00 रुपए

खिलौनों का बस्ता - कबाड़ से जुगाड़ की तर्ज़ पर कुछ नए प्रयोगों और मॉडलों की किताब, पृष्ठ - 68, मूल्य - 10.00 रुपए डाक से 11.00 रुपए

खेल खेल में - माचिस की तीलियों, डिब्बी और वॉल्व ट्यूब जैसी चीज़ों से विज्ञान के कुछ सस्ते, सरल और रोचक मॉडल बनाने की जानकारी, मूल्य 8.00 रुपए, डाक से 9.00 रुपए

बोल अरी ओ धरती बोल - छात्रों के एक समूह 'प्रतिध्वनि' द्वारा संकलित गीत। ऐसे गाने जिनमें गांव की मिट्टी का सोंधापन है, लोगों के अरमान हैं, उनकी खुशी है, एक उम्मीद है, जीवन है।
मूल्य 5.00 रुपए, डाक से 6.00 रुपए
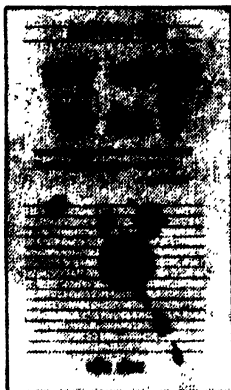
बच्चों के मन में स्कूल को लेकर इतना भय क्यों है? क्या कारण है कि वे अपनी सामर्थ्य का एक छोटा-सा हिस्सा ही स्कूलों में विकसित कर पाते हैं। ऐसे ही कई सवालों को लेकर लिखी गई प्रसिद्ध शिक्षाविद् जॉन होल्ट की किताब 'हाउ चिल्ड्रन फेल' का हिंदी रूपांतरण - 'बच्चे असफल कैसे होते हैं' पृष्ठ - 283, मूल्य पेपरबैक - 40.00 रुपए (डाक से 50.00 रुपए), सजिल्द - 100 रुपए (डाकखर्च सहित)

एकलव्य के शैक्षिक प्रयोगों में विकसित सामग्री
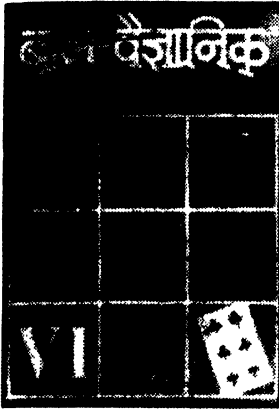
बाल वैज्ञानिक
कक्षा 6, 7 और 8
होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के तहत म.प्र की तकरीबन 500 माध्यमिक शालाओं लागू विज्ञान की पुस्तकें, तीन किताबों का सेट, मूल्य 41.25 रुपए, डाकखर्च अतिरिक्त

खुशी-खुशी कक्षा 1 से 5 तक - एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के लिए तैयार पुस्तकें, नौ किताबों का सेट 150 रुपए, डाकखर्च अतिरिक्त
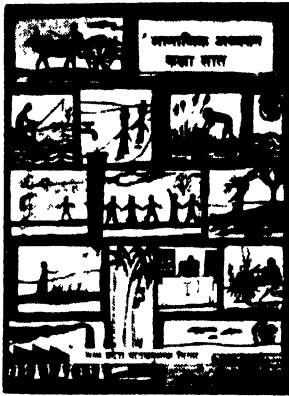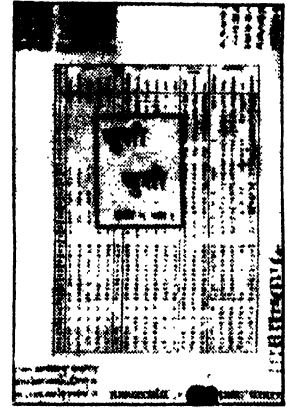
सामाजिक अध्ययन
कक्षा 6, 7 और 8
एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में विकसित की गई पुस्तकें, तीन किताबों का सेट, मूल्य - 90 रुपए, डाकखर्च अतिरिक्त
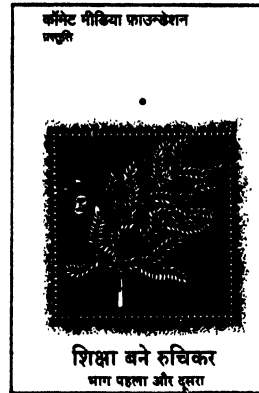
शिक्षा बने रुचिकर
बंबई के कॉमेट मीडिया फाउंडेशन द्वारा तैयार की गई वीडियो फिल्म, जिसमें एकलव्य की तमाम शैक्षिक गतिविधियों को समेटा गया है। हिंदी और अंग्रेज़ी में उपलब्ध।
समय - 60 मिनट, मूल्य 350 रुपए, डाकखर्च अतिरिक्त

इनके अलावा भी . . . .

जनविज्ञान का सवाल - भोपाल गैस त्रासदी को लेकर तैयार की गई पोस्टर प्रदर्शनी की सचित्र पुस्तिका, मूल्य 3.00 रुपए
माचिस की तीलियों के रोचक खेल (पहेलियां) - मूल्य - 3.00 रुपए
सामाजिक अध्ययन शिक्षण : एक प्रयोग - सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम के बारे में जानकारी देती पुस्तिका, मूल्य 5.00 रुपए
विज्ञान क्या है - (चकमक के एक अंक में उपलब्ध) मूल्य 2.50 रुपए
इतिहास क्या है - (चकमक के एक अंक में उपलब्ध) मूल्य 2.50 रु.
हमारी सेहत हमारी लड़ाई - गैस पीड़ितों के लिए एक स्वास्थ्य पुस्तिका, मूल्य 5.00 रुपए
बोलो क्या तुम चुप बैठोगे - नर्मदा पर एक लंबी कविता, मूल्य 2.00 रुपए
जवाब-दर-सवाल - जनगीतों का संकलन, मूल्य 5.00 रुपए
प्राशिका रिपोर्ट - एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (प्राशिका) में नवाचार को डाक्यूमेंट करती रिपोर्ट (अंग्रेज़ी में), रत्नासागर, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ - 160, मूल्य 75.00 रुपए। (हिंदी संस्करण प्रेस में)
कहानी संग्रह - प्राशिका समूह द्वारा संकलित कथाएं - बच्चों के साथ बोलने, सुनने के लिए, मूल्य 10.00 रुपए
कविता संग्रह - प्राशिका समूह द्वारा संकलित कविताएं - बच्चों के साथ गाने-गुनगुनाने के लिए, मूल्य 10.00 रुपए
लोमड़ी और ज़मीन - चकमक में प्रकाशित बच्चों की रचनाओं का संकलन, मूल्य 12.00 रुपए
प्यारा लड्डू - चकमक में प्रकाशित बच्चों की कविताओं का संकलन, मूल्य 10.00 रुपए
टिकाऊ खुशहाली की ओर - सरदार सरोवर परियोजना का एक विकल्प, मूल्य 30.00 रुपए

एकलव्य के कार्यक्रमों तथा प्रकाशनों के बारे मे अधिक जानकारी, एकलव्य, ई -1/25, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) - 462 016 से मिल सकेगी। सामग्री के लिए राशि अग्रिम भेजें

काम एक-सा, फिर भी.....

प्रकृति की विविधता हमें आकर्षित करती है। बड़े जीव-जंतुओं का तो क्या, बस चलते-फिरते देख लो आकार, रंग, रूप में अंतर दिख जाएगा। लेकिन उन छोटे जंतुओं के बीच अंतर देखने की शायद ही कभी कोशिश करते हों, जिन्हें रोज़मर्रा की दौड़-भाग में बस कीड़ा कह दो और फुर्सत।

जैसे इन दोनों को ही देखिए। एक तो है खटमल और दूसरा है मिड़ूला या कड़ीला (देशी बोली के नाम) (Ticks)। वही सफेद-सा दिखने वाला जो मवेशियों, कुत्तों आदि के बदन में धंसा रहता है।

वैसे दोनो का काम एक-सा ही है। खून चूसना। लेकिन दोनों बहुत फर्क जीव हैं, संरचना में भी और आदतों में भी।

जैसे एक है कि हमेशा शरीर में धंसा ही रहता है। और दूसरा है कि खून चूसकर भाग जाएगा और जा छुपेगा कहीं गद्दों तकियों के बीच या खटिया की लकड़ी की दरारों के बीच। कई तरह की बीमारियों के कारण दोनों ही काफी नुकसान देह हैं।

मिड़ूला की आठ टांगें होती हैं। मकड़ी की भी। इसीलिए ये मकड़ी का रिश्तेदार है, लेकिन बहुत दूर का। मकड़ी का शरीर साफ तौर पर दो भागों, मुंह और पेट में बंटा दिखता है। लेकिन मिड़ूला में कुल मिला कर एक ही हिस्सा होता है, मुंह और पेट जैसा कोई विभाजन नहीं।

मकड़ी का रिश्तेदार होने का मतलब यह नहीं कि मकड़ी भी हमारे लिए नुकसान देह है। जनाब वो तो हमारी दोस्त है, कैसे, फिर किसी अंक में।

इसी तरह खटमल संरचना में जंतु-जगत में कीट (Insects) समूह में आता है।

इस समूह के जीवों की खास पहचान है उनके शरीर की संरचना और तीन जोड़ी टांगे। इनका शरीर तीन हिस्सों में साफ तौर पर बंटा रहता है। मुंह, बीच का हिस्सा और पीछे पेट। इनके मुंह से दो एंटीना जैसी पतली संरचनाए लगी होती हैं। जिनसे ये विभिन्न चीज़ों को महसूस करने का काम करते हैं। अगर इनकी रिश्तेदारी देखें तो ये मच्छरों के बहुत करीब के रिश्तेदार हैं।

खटमल का तो क्या? धूप में कपड़े सुखाओ, सफाई रखो। लेकिन उन लोगों से पूछिए जिनके घरों में मवेशी, कुत्ते आदि हैं। कितनी मुश्किल होती है इस मिड़ूले को खींच निकालने में।

वैसे ऐसी रिश्तेदारियां खोजने में मज़ा आता है न। जैसे स्पष्ट होने के लिए हमने भी गाय की टांगों से एक मिड़ूला खींचा और देखा कि भई आठ टांगे ही हैं न!

अब आप भी ज़रा खोजिए ऐसी रिश्तेदारियां। शुरुआत मवेशियों में मिलने वाली 'किलनी' और 'जुएं' से कर सकते हैं।
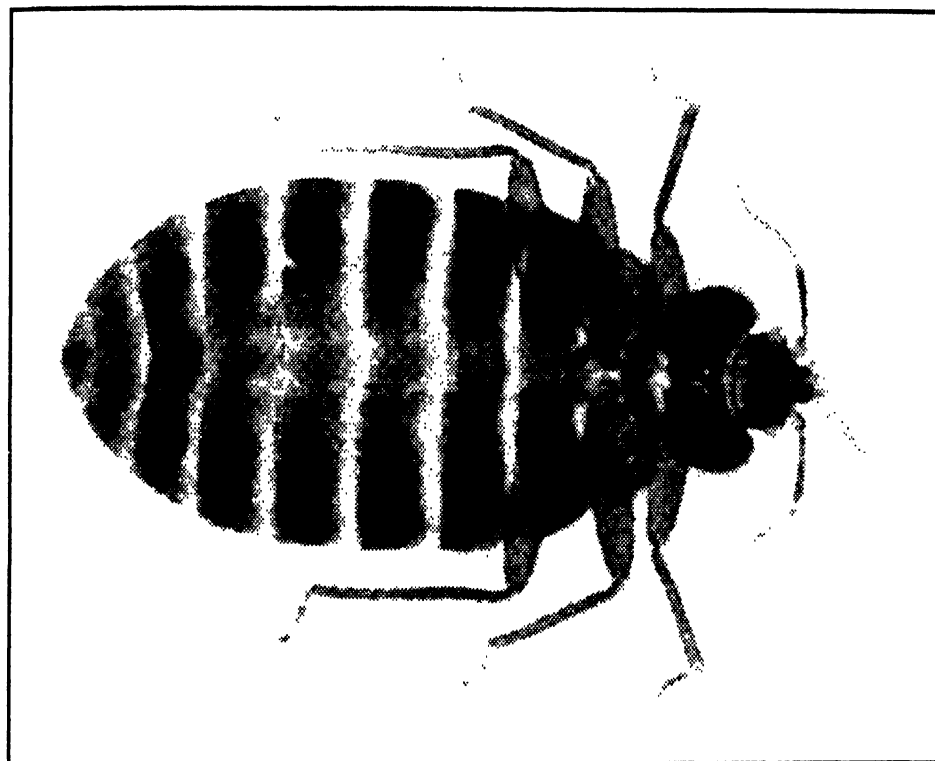
ऊपर खटमल; मवेशी की आंख से चिपका मिड़ूला (नीचे)
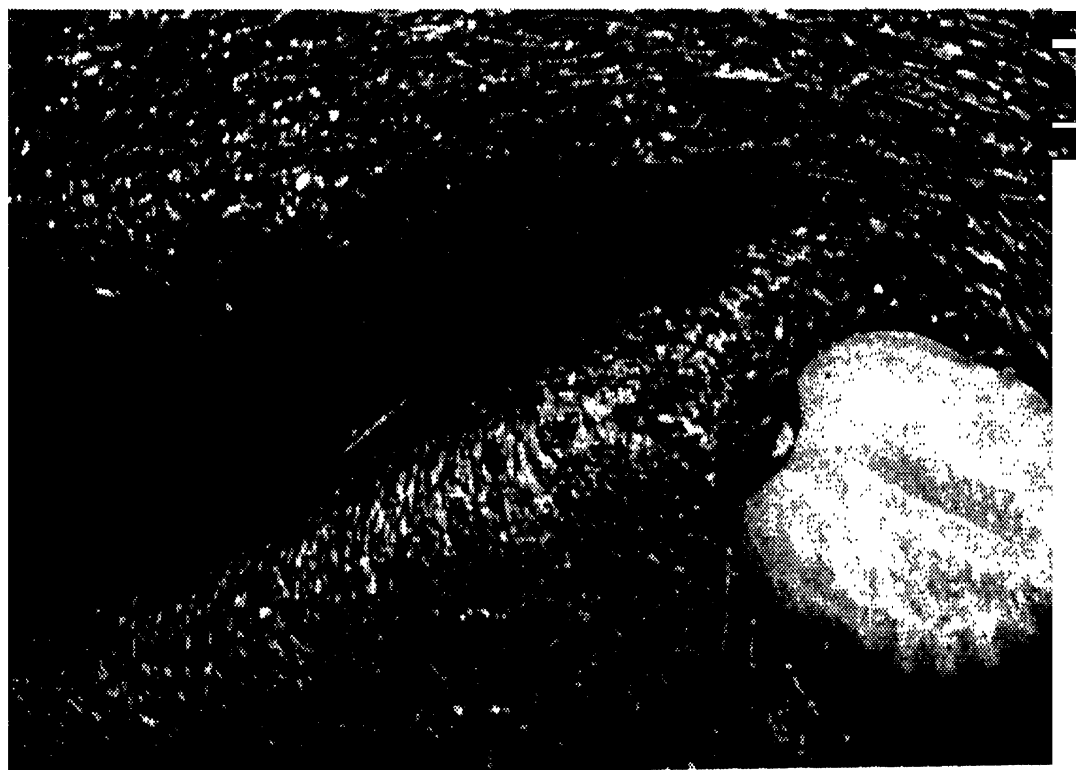
प्रकाशन: एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद - 461 001
मुद्रण: आदर्श प्रिंटर्स, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल - 462 011